योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

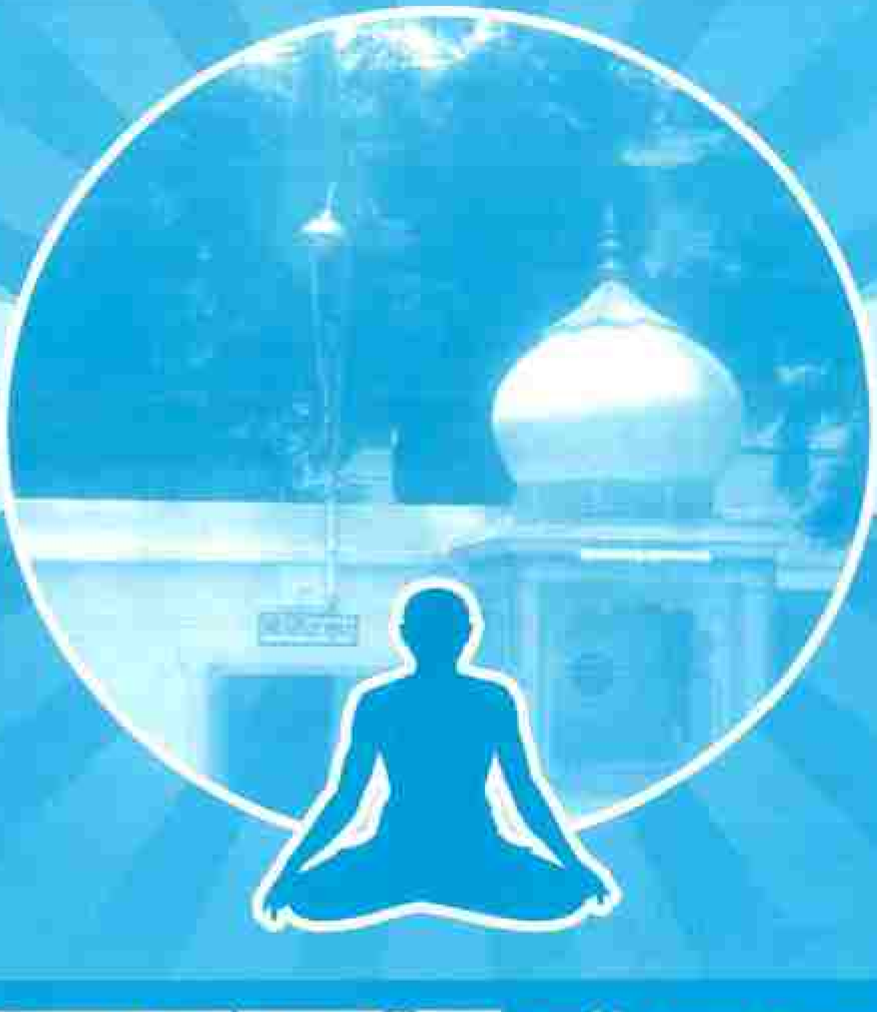

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 53 : अंक : 04
जुलाई 2021

प्रकाशन तिथि : 01.07.2021

अमृतकण

देवकिन्नरगन्धर्वाः पितृयक्षाश्च चारणाः
मनुयोऽपि न जानन्ति गुरुशुश्रूषणे विधिम्

देवता, किन्नर, गंधर्व, पितृ, यक्ष, चारण और मुनि भी गुरु शुश्रूषा की विधि नहीं जानते।

◆ ◆ ◆

मदाहंकारगर्वेण तपोविद्याबलाधिकाः
संसारकुहरावर्ते घटीयन्त्रं तथा पुनः

ये जीव मद अहंकार और गर्व से तप विद्या और बल के अधिक होने पर भी, घटीयत्र के समान संसार रूपी गड्ढे में गिरते हैं।

◆ ◆ ◆

न मुक्ता देवगन्धर्वाः पितरो यक्षकिन्नराः
ऋषयः सर्वसिद्धाश्च गुरुसेवापराङ्मुखाः

देवता, गंधर्व, पितृ, यक्ष, किन्नर, ऋषि और सब सिद्ध, गुरु सेवा से विमुख होने से मुक्त नहीं हुए हैं।

◆ ◆ ◆

ध्यानं शृणु महादेवि सर्वानन्दप्रदायकम्
सर्वसौख्यप्रदं चैव भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्

हे महादेवी! सब आनन्द के देने वाले, सर्व सुख के देने वाले, भुक्ति और मुक्ति के देने वाले ध्यान को सुनो।

◆ ◆ ◆

गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः
सामर्थ्य तत्प्रसादेन केवलं गुरुसेवया

ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर गुरु की कृपा के प्रसाद से हुए हैं। केवल गुरु की सेवा करने से और गुरु के प्रसाद से उनको सामर्थ्य प्राप्त होता है।

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 54 जुलाई 2021 अंक : 04

नमामि हरिं परम

नाम संकीर्तनं यस्य सर्वपाप प्रणाशनम्।
प्रणामो दुखशमनस्तं नमामि हरिं परम्।।

श्रीमद्भागवत् 12/13/13

अर्थात् – जिनके नाम का संकीर्तन सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाला है, जिनको किया गया प्रणाम सम्पूर्ण दुःखों को शान्त कर देता है, उस परमतत्त्व स्वरूप श्री हरि को मैं नमस्कार करता हूँ।

■■■

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख- योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	6
3.	श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा- डॉ. विजय सिंह	9
4.	साधकों के प्रश्न तथा उनके उत्तर- श्री सद्गुरुदेव जी द्वारा	12
5.	अन्तर्राष्ट्रीय-योग दिवस 2021- आचार्य, श्रीसिद्धगुफा, संवाई	21
6.	महा प्रभु रामलाल जी 'रक्षा कवच'- राजेश कुमार सिंह	22
7.	ईश्वर का नाम तथा उसका स्वरूप- श्री मानिकचन्द ऊमर वैश्य	24
8.	गुरु शरणागति- श्री अन्तूराम यादव	27
9.	ज्योतिष-शास्त्र में सिद्धयोग- श्री सूरजप्रकाश	30
10.	श्रेय-मार्ग और प्रेय-मार्ग - श्री पूर्णाचन्द्र पन्त शास्त्री	37

●●●

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 380.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

विशेष लेख—

धारणा : शक्ति प्राप्ति का साधन

(योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज)

हमने कभी किसी लेखों में यह भली प्रकार से समझा दिया है कि शक्ति—विहीन व्यक्ति कुछ भी नहीं है। हमारे शास्त्रों का भी कथन है।

''नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो''

अर्थात् बलहीन मनुष्य को आत्म—पद की प्राप्ति स्वप्न में भी सम्भव नहीं है। जो प्राणी शक्तिहीन है वह लोक व परलोक के सुख को किसी प्रकार भी प्राप्त नहीं कर सकता। उसका जीवन केवल इस प्रकार का है जिस प्रकार से वर्षा काल में अनेक प्रकार के कीट—पतंगे आदि जन्म लेकर मर जाया करते है। मनुष्य जब से जन्म ग्रहण करता है तब से उसके मन में शक्ति—प्राप्ति की धुनि सवार रहती है। किन्तु ''मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना'' के नियमानुसार साधन में मनुष्य अपनी मति के अनुसार प्रवृत्त होता है। इसलिए वह जिस प्रकार की साधना करता है उसी प्रकार की शक्ति का अनुभव कर अपने आपको आह्लादित कर लेता है किन्तु उसका वह आह्लाद बहुत थोड़े समय के लिए होता है जिस प्रकार से समुद्र की मछली को कहीं तपी हुई बालुका में डाल दिया जाये तो वह इस बालुका की गर्मी को पाकर तड़प जाया करती है और यदि उसको कोई छोटा सा भी जलाशय मिल जाता है तो उसे पाकर उसे शान्ति मिलती है किन्तु यह शांति भी उसके लिए अस्थाई रहती है। जब तक वह अपने घर समुद्र को प्राप्त नहीं हो जाती तब तक उसका दुःख तड़पना किसी भी प्रकार से कम नहीं हो सकता। इसी प्रकार यह जीवात्मा शक्ति के भण्डार परमात्मा का अंश है। अतः जब तक यह उन्हीं को प्राप्त नहीं हो जाता तब तक छोटी—मोटी शक्तियों को पाकर इसको शान्ति उपलब्ध नहीं हो सकती और जिसको शान्ति ही नहीं मिली, उसको सुख कहा से आयेगा। इसलिए योगियों ने अपने तप के आधार पर उच्चतम शक्ति प्राप्त करने के उपायों का अन्वेषण किया जिनको अपनाते हुए वे कभी भी दीनता को प्राप्त नहीं होते। हमारे शरीर में सभी प्रकार की शक्तियों की उत्पत्ति का केन्द्र मन है। मन को ज्योतियों की भी महाज्योति कहा गया है और वेद मन्त्रों में उसको शिव संकल्प वाला होने की प्रार्थना की गई है।

वेद भगवान ने कहा है कि हमारा मन जैसे जागता हुआ दूर—दूर भ्रमण करता है, और सोता हुआ भी इस प्रकार क्रियाशील बना रहा करता है। उसमें शुभ संकल्पों का वास हो जिससे वह हमारे उत्थान का कारण बने। हमारे पूर्वजों का कथन है—

मनएव मनुष्याणाम्, कारणं बन्धमोक्षयोः।

अर्थात् बन्ध और मुक्ति का कारण मन है इसलिए सर्वप्रथम मन की चंचलता को रोक कर शक्ति संचय करने के लिए उसका संयम में ले आना बहुत ही आवश्यक है। भगवान पतंजलिदेव ने 'योग दर्शन' में अष्टांग योग का वर्णन किया है, यह सारे-के-सारे अंग यद्यपि मन पर कण्ट्रोल करने के लिये अचूक साधन हैं। किन्तु फिर भी सब प्रकार की साधना करते हुए अष्टांग योग के अन्दर धारणा, ध्यान और समाधि मनोनिग्रह करने के तीन प्रमुख साधनों का उल्लेख किया है। जब तक मन किसी धारणा के द्वारा अन्तर्मुखी नहीं होता तब तक इसके अन्दर शक्तियों का उदय नहीं हो सकता। किसी महा वृक्ष को छेदन करने के लिए पहले इस प्रकार के शस्त्र की जरूरत है जो तेजधार वाला हो और जो उसे काट सके इसलिये परम श्रेय लाभ करने के लिये और अपने अन्दर दिव्य शक्तियों को संग्रहीत करने के लिये प्रथम मन को ही वश में लेना बहुत आवश्यक है। इसकी पहली साधना धारणा से आरम्भ होती है।

धारणा

धारणा का अभ्यासी मनुष्य वाह्य जगत् में प्रवेश करने की योग्यता को धारण करता है। ध
ारणा क्या है? इसके विषय में भगवान् पतंजलि देव अपने सूत्र में इस प्रकार निर्देश करते हैं-

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।

अर्थात् किसी लक्ष्य स्थान में चित्त को इकट्ठा करना धारणा कहलाती है। यह धारणा ही योग का सर्व प्रथम सोपान है। यहाँ से ही मनुष्य का सर्वाधिक मन एकाग्र होना आरम्भ होता है। धारणा कहाँ करनी चाहिए इस विषय में शास्त्रों के अनेक मत हैं किन्तु व्यास देव जी योग-दर्शन के भाष्यकार ने धारणा के इस प्रकार बतलाये हैं-

नाभिचक्रे, हृदय पुण्डरीके, मूर्ध्नि ज्योतिषि, नासिकाऽग्रे, जिह्वाऽग्रे, इत्येवमादिषु देशेषु, वाह्ये वा विषये, चित्तस्य वृत्ति मात्रेण बन्ध इति धारणा।

अर्थात् नाभि चक्र, हृदय, कमल, मूर्ध्व ज्योति, नासिका अग्र, जिह्वा अग्र इत्यादि स्थानों पर चित्त की वृत्ति मात्र को एकाग्र करना धारणा कहलाती है। वृत्ति मात्र कहने का अभिप्राय यह है कि इनको हम अपने मन की वृत्ति कल्पनात्मक रूप से चिन्तन करें, जिस प्रकार से आंख रूप को प्रत्यक्ष देख लेती है और मन उस रूप की भावना किया करता है। देखे सुने हुए विषय को मन का भावना रूप में चिंतन करना ही वृत्ति बन्ध है। इसका अभिप्राय इस प्रकार समझ लेना चाहिए, जैसे हमने हृदय कमल में भगवान् शिव के स्वरूप पर धारणा करन आरम्भ करें और कल्पना से उनके स्वरूप को हम हृदय में बैठा हुआ देखने लगें तो यही हृदय कमल की धारणा है। बार-बार कल्पना से भगवान् शिव, श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्री विष्णु या अन्य किसी भी इष्टदेव के स्वरूप का हृदय कमल में चिन्तन करना यह हृतपुण्डरीक में होने वाली धारणा है इसी प्रकार से मूर्धा ज्योति, नासिका अग्र, जिह्वाग्र, नाभि चक्र आदि में धारणा की जाती है। धारणा करने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह फल

4 सिद्धयोग / जुलाई 20

की इच्छा को छोड़ करके कर्म को करता रहे। किसी भी काम में मनुष्य जल्दी परिणाम को प्राप्त नहीं कर सकता। भगवान् पतंजलिदेव का आदेश है–

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः।

अर्थात् किसी भी अभ्यास को हम करना शुरू करें तो उसके परिणाम की प्रतीक्षा के लिए उसका वर्षों तक लगातार करते रहना बहुत आवश्यक है। यही नही कि हम एक–दो दिन करके ही उसके परिणाम पर नजर डालने लगें। काफी लम्बे समय तक उस अभ्यास को करना चाहिए और लगातार करना चाहिए अर्थात् इस नियम में कोई विघ्न नहीं आने पावे। आज कर लिया कल फिर छूट गया, फिर दो चार रोज करके फिर कुछ समय के लिए छूट गया–इस प्रकार का अभ्यास सफलता के उच्चतम स्तर पर नहीं ले जा सकता। इसके साथ–साथ एक बात यह भी परमावश्यक है कि हम श्री गुरुदेव के वचन पर विश्वास करके उस अभ्यास को करें जिसमें हमारी श्रद्धा परिपूर्ण रूपेण हो, हमने किसी मन्त्र का जाप शुरू किया और उसमें हमारी आस्था न हुई तो उसका भी परिणाम जल्दी श्रेयस्कर नहीं हो सकता। वैसे शास्त्रीय नियम के अनुसार **''अकर्णात् कर्णम् श्रेयः''** न करने से कुछ करना ही अच्छा है, इस बात को विचार में रखते हुये जो कुछ भी किया जाये, कुछ न कुछ भले के लिए तो होता ही है, किन्तु यदि हम उसके उत्तम और अन्तिम निष्कर्ष को देखना चाहते हैं तो उपरोक्त तीनों नियमों का पालन करना हमारे लिए बहुत ही आवश्यक है। इसलिए धारणा को भी परिपक्व करने के लिए हमें कम–से–कम तीन साल तक एक विषय पर ही परिपक्व मन लगाना चाहिए। तीन साल तक यदि मन्दाधिकारी भी उपरोक्त सूत्र के अनुसार धारणा का अभ्यास करेगा तो उसका भी मनोबल अवश्य बढ़ेगा ही बढ़ेगा। धारणा के अभ्यास से मन में विचार करने की उच्च स्तर की योग्यता प्रकट हो जाती है और वह एकाग्रता की ओर चलने लगता है। भगवान् पतंजलि देव ने योग–दर्शन में कहा है–

धारणा सु योग्यता मनसः।

अर्थात् धारणा करने पर मन की योग्यता बढ़ती है। मन में बल का विकास होता है। और वह सब कुछ करने की ताकत वाला बन जाता है। जो व्यक्ति दो या तीन साल तक लगातार प्रातः व सायंकाल 3–3 घण्टे अपने ध्येय विषय को धारण करके उसको वृत्ति निरोध से एकाग्रित करना चाहता है उसका ऐसा अनवरत अभ्यास करने पर अवश्य ही वह विषय उसके मन में प्रगट होने लगता है। मन को एकाग्र करने के कुछ इस प्रकार के नियम हैं कि जिनके पालन करने से हर मनुष्य का मन एकाग्र हो ही जाता है। यदि वह किसी अच्छे कण्ट्रोलर अर्थात् अच्छे नियन्त्रक गुरुदेव की आज्ञा में बंधकर अपने अभ्यास को नियमानुसार करता है तो इस प्रकार से लगातार किया हुआ यह धारणा अभ्यास स्वतः ही ध्यान के रूप में बदल जाया करता है।

सम्पादकीय—

गुरु पूर्णिमा का अमृत पर्व

—आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज

हमारे देश में गुरु पूर्णिमा व व्यास पूर्णिमा—व्यास पूजा का पावन पर्व अषाढ़ माह की पूर्णिमा को बड़े धूम धाम व उल्लास से मनाया जाता है। ईश्वर प्रदत्त अद्भुत ज्ञान राशि वितरण गुरु परम्परा से अनादि काल से चला आ रहा है।

परमात्म ज्ञान के उस अथाह भण्डार से गुरुदेव द्वारा ही वह दिव्य ज्ञान संचारित होकर मानव धरातल तक पहुँचता है। जिससे सामान्य व्यक्ति भी इस ज्ञान का ग्राहक बन जाता है, बशर्ते व्यक्ति इस विद्या का उचित अधिकारी हो। गुरु मुख से ही परमात्म ज्ञान का श्रवण करके साधक अपने परमार्थ पथ पर चला करता है। गुरु मुख से प्राप्त विद्या ही फलवती होती है। गोविन्द से भी गुरु की महिमा अधिक बताई गई है। कहा है कि—

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु आपनो गोविन्द दियो लखाय।।

गुरु कृपा से ही ईश्वर के दर्शन संभव होते हैं। इसलिए प्रथम पूजा गुरुदेव की ही पूजा की जाती है। तत्पश्चात् गोविन्द की। सभी महान सन्तों ने गुरु की महिमा गाई है। गुरु शब्द शब्दे (क्रयादिगण) तथा गृ निरारणे इन दो धातुओं का व्युत्पन्न होता है। **'गृहाति उपदिशादि धर्मतिमति—गुरुः'** जो योगधर्म का उपदेश करे वही गुरु है। **''यदा गीर्यत स्तूयते देव—गन्धर्वा दिमिरिति गुरुः।''** अथवा देव गन्धर्वादि जिसकी स्तुति करते हैं वह गुरु है। जो गुरु वही पूर्ण है। गुरु वह है जो गरिमामय है। जिसमें गुरुत्वाकर्षण है जीवों को अपनी ओर खींच लेते हैं। जो सबसे बड़ा है सर्व समर्थ, व्यापक है, अनन्त है। पूर्णत्व गुरुत्व में ही है। उस पूर्ण सत्ता को ही शास्त्रों की भाषा में ब्रह्म कहते हैं। अर्थात् जो सर्वत्र व्याप्त है। **''सर्व समाप्नोषि ततोऽसि सर्व**—(गीता) जो सबको अपने में समेट लेता है। इसलिए वह सर्वरूप है। उसे सर्वगत भी कहा जाता है। सर्वगत होने से ब्रह्म पूर्ण है। उपनिषद् में मंत्र आता है। **''पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते।''** अर्थात् वह ब्रह्म पूर्ण है। यह जगत भी उससे व्याप्त होने के कारण पूर्ण कहा गया है। पूर्ण में से पूर्ण निकाल देने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है। यहाँ पर पूर्ण शब्द ब्रह्म की अभिव्यक्ति के लिए ही व्यवहृत हुआ है। श्रुति में **'रसो वै सः'** कहकर ब्रह्म को रसरूप में माना है। रसों का मूल स्रोत चन्द्रमा है। पूर्ण चन्द्रमा में अमृत बनता है। वह अमृत ही रसरूप ब्रह्म है। गुरु में भी अमृत्व है। शिष्य को अमृत अमर बना देने की सामर्थ्य गुरुदेव में ही होती है, अन्य किसी में नहीं। गुरु पूर्ण

समर्थ होता है चेतना का महास्रोत होता है। भगवान का अवतरण समय–समय पर इस संसार में होता चला आ रहा है। जब वे मानवाकृति में आते हैं, तब वे अपने सदुपदेश से, अपने दिव्य संस्पर्श से, लोकोत्तर चरित्र से जीव के कल्याण के लिए कृत संकल्प रहते हैं। इस रूप में भगवान का ऐसा मिलन जीव का आध्यात्मिक एवं भौतिक उभय मिलन होता है। उस समय वे गुरु शिष्य के रूप में ही होते हैं। उस क्षण जीव उस परम गुरु अर्थात् अपने इष्ट को पाकर यह भूल जाता है कि वह जन्मने और मरने वाला जीव है। वह इष्ट के रूप में तदाकार हुआ सिद्ध समर्थ गुरु अपने शिष्य के आत्मोत्थान के लिए मानव शक्ति का संचार करके शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक मन के शोधन के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार की क्रियायें कराते रहते हैं।

भगवान कृष्ण गीता में मन और बुद्धि को इष्ट के सगुण रूप में समाहित कर देने की बात कहते हैं। भगवान की कृपा से जीव के मन और बुद्धि को अपने में विलय करा लेते हैं। जिससे जीव जीवत्व को त्याग कर ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है। उस परम भाग्यशाली जीव को भगवान जीव ब्रह्मैक्य का बोध करा देते हैं। यही भगवान के अवतरण का रहस्य एवं उद्देश्य है। भगवान के इसी गुरुत्व के आकर्षण के कारण ही वे जगद्गुरु कहलाते हैं। जीवों का इस प्रकार परम गुरु से मिलन सहसा संयोगवश नहीं होता है। जन्म जन्मान्तर की उस आत्मदेव से मिलने की चाह तद्भावना भवित होकर उस जन्म के दृढ़ संस्कार सम्बन्ध ा के स्थापित होने पर यह बात संभव हो जाती है। अन्यथा परात्पर शक्ति के पृथ्वी पर आविर्भाव होने पर भी उनके निकट सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति भी अपने कर्मों की मलीनता से भगवान के निन्दक ही बनकर जीवन बिता देते हैं। हम में से बहुत से भाग्यवान पुरुषों ने उस परम देव का श्री चन्द्रमोहन जी महाराज सद्गुरु रूप में दर्शन एवं पावन सानिध्य का परम लाभ प्राप्त किया है। उनके पावन चरण तल में बैठने पर जीव की समस्त कामनायें एवं वासनायें विलुप्त हो जाती थीं। परम शांति एवं आनन्द का साम्राज्य छा जाता था। प्राण स्वतः ही निश्चल हो जाता था। सभी उपस्थित शिष्य समुदाय का जिनके गुरुदेव ही एक मात्र परायण एवं जीवन के सूत्रधार हैं यह देखकर **'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणित्रणा इवा'** — यह वचन मानस पटल पर घूमने लगता था।

ऋषि कल्प गुरुदेव के देदीप्यमान मुखमण्डल को देखकर अध्यात्म की किरणें स्वतः शिष्यों के मानव तल को स्पर्श कर लिया करती थीं। गुकार अन्धकार का वाचक है और रुकार अन्धकार निवारक या प्रकाश देने वाला। जो अन्धकार अज्ञान को दूर कर शिष्य के हृदय में ज्ञान की ज्योति जला दे वही गुरु है—ऐसा गुरुगीता का वचन है। **''नास्ति त्वं गुरोः परम।''** गुरुदेव से आगे कोई तत्व नहीं यह भगवान सदाशिव का आदेश है। शिष्य का जीवन–मृत्यु समर्थ गुरुदेव के हाथ में होता है। आवश्यकता है शिष्य के गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण की जो काफी दुःसाध्य है। योग से जीवन और ब्रह्म का एकत्व होता है। गुरु भक्ति

से गुरु शिष्य का एकत्व हो जाता है। जो शिष्य के जीवन का लक्ष्य रहा करता है। इसीलिए नित्य ही गुरु गीता के इस श्लोक का मनन करता हुआ कहता है–

नित्यं शुद्धं निराभासं निराकारं निरंजनम्।
नित्यबोधंचिदानन्दं गुरु ब्रह्म नमाम्यहम्।।

अर्थात् जो नित्य है, शुद्ध है, आभास रहित, आकार रहित, माया रहित, नित्य बोध स्वरूप, चेतन और आनन्द रूप ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार गुरु की सेवा से, चिन्तन से शिष्य गुरु की उपासना करता है वह भव बन्धन से मुक्त हो जाता है। इसलिए गुरुदेव को भवभय विनाशक कहा गया है। गुरुदेव स्वयं मंत्र स्वरूप होकर शिष्य के आध्यात्मिक शरीर में अनुप्रविष्ट तत्पश्चात् शिष्य को अपने नित्य चैतन्य स्वरूप का बोध कराते हैं। शास्त्रों का लेख है–

''गुरु पूजा विहिनानाम् न सिद्धिः स्याद्कदाचन''। जो गुरुदेव की पूजा आराधना नहीं करते तथा गुरुदेव को संतुष्ट नहीं रखते उन्हें कभी सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। जो गुरुदेव के दिये मंत्र का जाप करता रहता है तथा गुरुपदिष्ट मार्ग से ध्यान करता है वही गुरुदेव का प्रिय भक्त होता है और उसे ही अन्तर्ज्ञान प्राप्त होता है।

अतः शिष्य को गुरु निष्ठ रहना चाहिए। फिर उसके लिए भूतल में कुछ भी अप्राप्त नहीं रह जाता। इस बार गुरु–पूर्णिमा 24 जुलाई 2021 को सम्पन्न होना है।

संसार

अधिकांश व्यक्ति संसार को दुःख और अशांति का घर समझते हैं। बहुत थोड़े व्यक्ति संसार को सुख और सौन्दर्य का धाम मानते हैं वस्तुतः संसार में सुख और दुःख दोनों होते हैं परन्तु दुःख की अपेक्षा सुख अधिक होता है। संसार का सुख या दुःख पूर्ण होना मनुष्य की अपनी मनःअवस्था पर निर्भर होता है, अतः संसार के वास्तविक स्वरूप को भली–भांति जान और समझकर अपने को संसार के योग्य और संसार को अपने योग्य बनाना कल्याण प्रद होता है।

लोग संसार की निन्दा करते हैं। संसार की निन्दा करने की अपेक्षा उसका रहस्य जानना उत्तम है। लोग संसार की उपेक्षा करते हैं। उपेक्षा करने से उसका अध्ययन करना श्रेयस्कर है। लोग संसार का दुरुपयोग करते हैं। दुरुपयोग करने की अपेक्षा उसका सदुपयोग करना कल्याणकारी है।

–श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक

श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा

—डॉ. विजय सिंह

भागवत् में श्रीसुदामा जी का नाम किसी श्लोक में नहीं लिखा है। उन्हें ब्राह्मण देवता, द्विज-शिरोमणि आदि से भगवान ने सम्बोधित किया है। सुदामा जी का भरपूर स्वागत-सत्कार भगवान ने किया। एक दिन मुस्कराकर बोले-ब्रह्मन्! आप अपने घर से मेरे लिये क्या उपहार लाये हैं? सुदामा जी ने लज्जावश उन्हें चार मुट्ठी चिवड़े नहीं दिये थे। भगवान श्रीकृष्ण सभी के हृदय की एक-एक बात जानने वाले हैं। वे विचारने लगे 'यह मेरा प्यारा सखा है। पहले कभी लक्ष्मी की कामना से मेरा भजन नहीं किया है। पतिव्रता पत्नि के कहने से यहाँ आया है। मैं इसे ऐसी सम्पत्ति दूँगा जो देव दुर्लभ हो। ऐसा विचार करके चिथड़े वस्त्र में रखे चिवड़े को स्वयं छीन लिया और बोले यह क्या है? और बड़ा आदर करते हुये बोले-प्यारे मित्र! तुम मेरे लिये अत्यन्त प्रिय भेंट लाये हो ऐसा कहकर एक मुट्ठी चिवड़ा खा गये और दूसरी मुट्ठी ज्यों खाने के लिये भरे रुक्मिणी जी हाथ पकड़ लिया। रुक्मिणी जी बोलीं-विश्वात्मा! बस, बस।

सुदामा जी उस रात्रि भगवान श्रीकृष्ण के महल में ही रहे। आराम से खाया-पिया। वे भगवान के दर्शन जनित आनन्द में मग्न रहे। चलते समय उन्होंने कुछ न माँगा और न भगवान ने ही प्रत्यक्षतः कुछ दिया। वे श्रीकृष्ण चिन्तन में मग्न घर की ओर चल पड़े। अहा! भला देखो मुझ जैसे दरिद्र को अपने वक्षस्थल से लगा लिया। वे द्वारिका में बिताये कुछ दिनों को साक्षात् वैकुण्ठ निवास के आनन्द बोध में मग्न घर की ओर बिना थकावट के चलते गये। सुदामा जी चिन्तन में मग्न विचारते हैं कि स्वर्ग, मोक्ष, पृथ्वी और रसातल की सम्पत्ति तथा समस्त योग-सिद्धियों की प्राप्ति का मूल तो भगवान श्रीकृष्ण के चरण कमलों की पूजा ही है। परमदयालु कृष्ण मुझे थोड़ा भी धन इसलिये नहीं दिया कि कहीं यह दरिद्र धन पाकर मतवाला न हो जाये और मुझे भूल बैठे।

स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसयां भुवि सम्पदाम्।
सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम्।।19।।

भाव मग्न श्री सुदामा जी घर के पास पहुँच गये। वे वहाँ क्या देखते हैं सबका सब स्थान दिव्य रत्नजड़ित महलों से घिरा है। उपवन, उद्यान, सरोवर, पुष्पों और सुन्दर पक्षियों से कलरव युक्त हैं। वे भौचक्के रह गये। तभी जन समुदाय मंगलगीत गाते हुये उनके आगवानी के लिये आये। पतिदेव का सुभागमन सुन भागती हुयी ब्राह्मणी (सुशीला भागवत् में नाम नहीं

वर्णन है) प्रेमाश्रु बहाते आयी। वह सुदामा जी को चरण वन्दना की और उन्हें अपने महल में लिवा गयी। महल की तथा दास–दासियों की सुन्दरता, भव्यता का विस्तृत वर्णन भगवान शुकदेव जी ने परीक्षित से किया है। सुदामा जी ने भगवान् श्रीकृष्ण के इस अहैतुकी कृपा को मन–बुद्धि में समझ कर त्यागपूर्वक अनासक्तभाव से अपनी पत्नि के साथ भगवत्प्रसादस्वरूप विषयों को ग्रहण करने लगे और दिनों–दिन उनकी प्रेम भक्ति बढ़ने लगी। वे हर समय भगवान श्रीकृष्ण के ही ध्यान में तन्मय रहने लगे। ध्यान की प्रगाढ़ता से उनकी अविद्या की गाँठ कट गयी और वे थोड़े समय में भगवान के धाम को प्राप्त कर लिया। अब बयासीवें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण–बलराम से गोप–गोपियों की भेंट कथा कही गयी है।

श्री शुकदेव जी कहते हैं—परीक्षित्! एक बार सर्वग्रास सूर्यग्रहण लगा। उस ग्रहण का पता ज्योतिषियों के द्वारा पहले ही बता दिया गया था। देश–देशान्तर से लोग पुण्यार्जन हेतु समन्तपचक–तीर्थ कुरुक्षेत्र आये। यदुवंशी अक्रूर, वसुदेव, उग्रसेन आदि बड़े बूढ़े महाभाग्यवान् यदुवंशियों ने कुरुक्षेत्र पहुँच कर संयमपूर्वक स्नान कर ग्रहण पर्व पर उपवास रखा। बहुत से प्रकार के दानादि दिये। विश्राम के पश्चात् वहाँ आये अन्य नरपतियों से मिलने–जुलने का कार्यक्रम चला। यदुवंशियों के परम हितैसी नन्द आदि गोप तथा भगवान कृष्ण के दर्शन के लिये चिरकाल से उत्कण्ठित गोपियाँ भी आई हुई थीं। मिलन के प्रेम आवेग से लोगों की बोली बन्द हो गयी, आँखों से प्रेमाश्रु बह चले। अब वे बलराम जी तथा भगवान श्रीकृष्ण से भलीभाँति आदर सत्कार पाकर उन लोगों ने उग्रसेन जी से कहा—भोजराज! आप लोगों का ही जीवन सफल व धन्य है। क्योंकि जिन श्रीकृष्ण का दर्शन योगियों के लिये भी दुर्लभ है उन्हीं के सानिध्य में आप सभी नित्य–निरन्तर रहते हैं।

अथ ते रामकृष्णाभ्यां सम्यक् प्राप्त समर्हणाः।
प्रशशंसुर्मुदा युक्ता वृष्णीन् कृष्णपरिग्रहान्।।28।।
अहो भोजपते यूयं जन्मभाजो नृणामिह।
यत् पश्यथासकृत् कृष्णं दुर्दर्शमपि योगिनाम।।29।। *अ. 82 स्कं. 10*

जब नन्द बाबा ने जाना कि बलराम और कृष्ण भी अपनी राज रानियों सहित यहाँ आये हुये हैं तो वे उन्हें देखने के लिये वहाँ आये। भगवान श्रीकृष्ण और बलराम जी ने माता यशोदा और पिता नन्द जी के चरणों में प्रणाम किया। उस समय प्रेम के उद्रेक से दोनों भाइयों का गला रुद्ध हो गया। परिवारिक मिलन का वर्णन बड़ा ही ममता पूर्ण है। आज इतने दिनों बाद प्रेम की मूर्ति गोपियों को भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन हुये। वे मन ही मन श्रीकृष्ण का आलिंगन करते हुये समाहित हो गयीं। जो स्थिति उनकी थी वह नित्य–निरन्तर योगाभ्यास करने वाले योगियों के लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है। भगवान् ने उन्हें एकान्त में हृदय से लगाया और उनका कुशल–मंगल पूछा। सखियों! यह बड़ा सौभाग्य की बात है कि तुम

सभी को मेरा प्रेम प्राप्त हो चुका है, जो मेरी प्राप्ति कराने वाला है। भगवान ने गोपियों को अध्यात्मज्ञान की शिक्षा से शिक्षित किया। उसी उपदेश के बार–बार स्मरण से गोपियों का जीवकोश (लिंग–शरीर) नष्ट हो गया और वे भगवान से एक हो गयीं और वे भगवान से बोलीं–हे कमलनाभ! बड़े–बड़े योगेश्वर अपने हृदय में आपके चरणों का चिन्तन करते हैं। संसारकूप में गिरे को आपके चरणकमल ही निकले का एक मात्र अवलम्बन है। हम गृहियों को ऐसी कृपा कीजिये कि आपके चरण कमल हर गृहकार्य करते हुये भी सदा–सर्वदा हमारे हृदय में विराजमान रहें।

आहुश्च ते नलिननाभ पदारविन्द
योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः।
संसार कूपपति तो चरणावलम्बं,
गेहजुषामपि मनुस्युदियात् सदा नः॥49॥ *अ. 83 स्कं. 10*

— *प्रथम अवस्था में थोड़ा एकान्त में बैठकर मन को स्थिर करना चाहिए, नहीं तो इधर–उधर बहुत कुछ देख सुनकर मन चंचल हो जाता है। दूध को यदि पानी में मिलाओ तो वह पानी में बिलकुल मिल जाता है परन्तु दूध को एकान्त में जमाकर, दी बनाकर, उसे मथकर यदि मक्खन निकाल लिया जाये, तो फिर वह पानी के साथ नहीं मिलता, पानी के ऊपर ही तैरता रहता है। इसी प्रकार, जिनका मन स्थिर हो चुका है, वे कहीं भी बैठकर सदा ईश्वर का चिन्तन कर सकते हैं।*

— *निष्ठा और भक्ति के बिना सच्चिदानन्द की प्राप्ति नहीं होती। एक पति में ही निष्ठा रहने से स्त्री सती होती है, इसी प्रकार अपने इष्ट पर निष्ठा होने पर इष्ट का दर्शन होता है।*

— *हनुमान जी से किसी ने पूछा था, ''आज कौन–सी तिथि है?'' महावीरजी ने उत्तर दिया, ''मुझे वार, तिथि, नक्षत्र आदि किसी का पता नहीं। मैं तो केवल एक श्रीरामचन्द्रजी चरण–कमलों को ही जानता हूँ।''*

–रामकृष्ण परमहंस

साधकों के प्रश्न तथा उनके उत्तर

(श्री सद्गुरुदेव जी द्वारा)

पवित्र वनखण्ड में मकर–वाहिनी भगवती गंगा के पवित्र तट पर एक बहुत ही सुन्दर आश्रम दिखलाई दे रहा है। प्रातःकाल की पवित्र बेला है। ऊषा काल शनैः–शनैः निकट आता जा रहा है। आश्रम निवासी तपस्वी ब्रह्मचारीगण अपने नैत्यिक कर्म शौच–स्नान आदि से निवृत्त हो चुके हैं। वेद–पाठ की पवित्र ध्वनि आ रही है। प्रातःकालीन वेद–पाठ के बाद आश्रम में ब्रह्मयज्ञ करने वाले, ब्रह्मयज्ञ के बाद देवयज्ञ की तैयारी में हैं। शनैः–शनैः स्तलतः चारों ओर के आश्रम से ब्रह्मचारीगण वहाँ इकट्ठे हो चुके हैं। प्रातः कालीन मंगल गीत पवित्र सामवेद की विधि से गायन किये जा रहे हैं। ओह! कितना सुहावना दृश्य है? वेद–ध्वनि कितनी मनोहर है। मालूम पड़ता है कि इस आश्रम में स्वतः ही नाद–ब्रह्म का प्रकाश हो रहा है। एक ओर पवित्र सामवेद का गायन मनोहारी ध्वनियाँ, उधर देवयज्ञ करने वाले ब्रह्मचारियों की वेद–ध्वनि आश्रम में यज्ञ की पवित्र धूम, आश्रम के वातावरण को कितना शुद्ध बना रहा है। मालूम पड़ता है कि इस आश्रम में पूर्णरूपेण दैवी सम्पत्ति का उदय हो चुका है। धीरे–धीरे सभी वेद–पाठी लोग और स्तलतः आश्रम से आने वाले ब्रह्मचारीगण ध्यानावस्थित हो गये हैं। ध्यानमग्न ये सभी सन्त आश्रम के दृश्य को कितना मनोहारी बना रहे हैं, वर्णनातीत है। ओह! यह देखो, इधर आश्रम की गौशाला है, मालूम पड़ता है कि यहाँ के ब्रह्मचारीगण सभी गौ–दूध का ही पान करते हैं। गौशाला के अन्दर सेवक लोग गौ–सेवा में रत हैं। गौओं का प्रातःकालीन शुद्ध–शुद्ध हरी–हरी घास का आहार गौओं को दिया जा रहा है। उनके रहने के स्थान को घास–फूस आदि हटाकर गौमय को एक तरफ फेंक करके सूर्योदय से पहले ही गौशाला को परम शुद्ध बना दिया गया है। गौशाला की सेवा से निवृत्त होकर आश्रम की अन्य सेवाओं में सभी लग चुके हैं, शनैः–शनैः भगवान भास्कर अपने आगमन की सूचना दे रहे हैं। उषाकालीन आकाश उजला हो चुका है। आश्रम में आसपास के आश्रमों से सन्त–मण्डलियाँ एवं गृहस्थियों के समूह श्री जिज्ञासु भाव से आश्रम में आकर इकट्ठा होता जा रहा है। योगाचार्य भगवान तपोनिधि जी अभी तक समाधिस्थ हैं। भगवान् भास्कर का उदय हो चुका है, किन्तु योग भास्कर योगाचार्य श्री तपोनिधि जी अपनी पवित्र पर्णकुटीर से अभी बाहर नहीं आये हैं। पर्णकुटीर के झरोखों से जिज्ञासुवर्ग झुक–झुककर देख रहे हैं कि योग–मार्तण्ड कब समाधि से उठकर जिज्ञासु–समुदाय को अपने दिव्यदर्शन देकर कृतार्थ करेंगे। यह देखो श्री योगाचार्य जी के शरीर में कुछ–कुछ कंपन शुरू हो गया

है। मालूम पड़ता है कि उनका प्राण–कोष अब ब्रह्माण्ड से अण्ड में उतरने वाला है। बड़ी मनोहरिणी प्रणवध्वनि कानों में पड़ी। आचार्य के कण्ठ से निकली हुई यह ध्वनि साधकों के मन में एकाग्रता प्रदान कर रही है। सभी जिज्ञासु–समुदाय ने आचार्य को उठा हुआ देख करके गाना आरम्भ कर दिया ''हम कब से आये हैं योगेश्वर तेरे द्वारे'' जिज्ञासुओं की प्रेम–ध्वनि सुन करके योगाचार्य मुस्कराते हुए बाहर आये। साधकों के मन हर्षोल्लास से भर गये। उन्होंने योगाचार्य जी की जय–ध्वनियों से आकाश को निनादित कर दिया। कुटिया के सामने उपस्थित हुए जिज्ञासु लोगों की जय–ध्वनियों को सुनकर आसपास के रहने वाले सन्त समुदाय के भी हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। सभी के मन एक अनुपम से आनन्द से भर गये। यह लोग हर्ष–मग्न होकर कह रहे थे–भाई चलो, श्रीगुरुदेव समाधि से उठ गये हैं, उनके सामने चल करके हम लोग अपने आपको कृतार्थ करें। शनैः–शनैः तपो–मण्डली से आश्रम भर गया। श्री योगाचार्य तपोनिधि जी एक ऊँचे तख्त पर बिछाये गये पवित्र मृगचर्म पर आसनासीन हो गये। साधक–समुदाय के सामने बैठ जाने पर भी आचार्य का मुखमंडल बहुत ही शान्त दिखलाई दे रहा है, उनकी अब भी दृष्टि ऊर्ध्व दृष्टि दिखलाई दे रही है। आँखों की पुतलियाँ शनैः–शनैः नीचे आती हैं, किन्तु क्षण भर सभी लोगों की ओर देखते हुए भी भ्रूमध्यावलोकन करने लगते हैं। शनैः–शनैः योगाचार्य ने आँखें खोली एवं साधक–समुदाय को देखकर उनको कृतार्थ किया। योगाचार्य जी ने अपना भाषण आरम्भ किया। उन्होंने कहा बेटा–

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो,
नमेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः,
तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूंस्वाम्।।

अर्थात् यह आत्मा मनुष्य के अपनी बुद्धिमानी से, शास्त्रों के श्रवण से या बहुत प्रश्नोत्तरी करने से प्राप्त नहीं होता, किन्तु जिस पवित्र आत्मा को यह स्वयं स्वीकार करता है, उसी को प्राप्त होता है एवं उसके शरीर को अपना मन्दिर बना लेता है और वह सर्व शक्तिमान् जिसका वरण करते हैं, उसको अपने अन्दर विलीन कर लेते हैं अर्थात् वह उन्हीं का स्वरूप बन जाता है। आचार्य के भाषण को सुन करके एक जिज्ञासु साधक उठा और उसने हाथ जोड़ करके कहा कि– हे गुरुदेव! क्या इसी का नाम शक्तिपात है? जंगलों में रहने वाले ऋषि, मुनि, तपस्वी क्या अपनी शिष्य मण्डली को इसी शक्तिपात के द्वारा योग–दीक्षाएँ दिया करते हैं?

उत्तर–हाँ बेटा! यही सिद्धयोग है, इसी का नाम स्वयंवरण है और इसी का नाम

शक्तिपात है।

प्रश्न—हे गुरुदेव! क्या यह शक्तिपात सभी शिष्य मण्डली पर सामान्य रूप से बराबर होता है, और वह शक्ति सभी के अन्दर पूर्णरूप से जागृति हो जाती है।

उत्तर—हाँ बेटा! शक्तिपात तो सामान्य रूप से सभी के लिए बराबर ही होता है।

प्रश्न—हे गुरुदेव! यदि शक्तिपात सभी पर सामान्य रूप से बराबर होता है तो यह क्या कारण है? मैं तो यह देखता हूँ कि हमारे गुरु–भाइयों की ध्यान–समाधि की स्थिति तो सभी की बराबर नहीं होती। एक–एक गुरु–भाई तो इस प्रकार के हैं कि वह कई–कई घण्टे समाधिस्थ रहते हैं और कोई–कोई गुरु–भाई इस प्रकार है जिनका ध्यान सामान्य रूप से चलता है और उनमें भी कई एक ऐसे भी है कि जिन पर बार–बार शक्तिपात करने पर भी स्थिति बन ही नहीं पाती। इसका क्या कारण है?

उत्तर—बेटा! तुम्हारा प्रश्न ठीक है? यह तारतम्य रहता है और उसका कारण केवलमात्र एक ही है और वह यह कि साधक जितना–जितना अधिकारी होता है, उतना–उतना शक्ति को पा लेता है। सूर्य का प्रकाश सभी पर बराबर पड़ता है, किन्तु आतिशी शीशे के अन्दर पड़ा सूर्य का प्रकाश जहाँ पड़ता है, उस वस्त्र को जला देता है, आग लगा देता है और वही प्रकाश यदि पानी से भीगे हुए और गेंद के समान पिण्डाकार बने हुए एक वस्त्र पर पड़ता है, उसको वह सुखा भी नही पाता। इसलिए शक्तिपात को प्राप्त करने वाले साधक का हृदय कितना अधिकारी है, यह विचारने की आवश्यकता रहती है। यदि उत्तमाधिकारी है तो वह शक्ति को तत्काल ग्रहण कर लेता है और उसके अन्दर शक्ति का विकास भी उत्तमोत्तम हो जाता है। उसकी वृत्ति एकदम ऊँची उठने लगती है और यदि कोई साधक अधिकारी नहीं है, उसके अन्दर शक्ति का उत्थान नहीं हो पाता है।

प्रश्न—हे गुरुदेव! जिन साधकों पर शक्तिपात नहीं होता, उनको क्या करना चाहिए? किस उपाय से वे शक्तिपात के अधिकारी बन सकेंगे। क्या वे लोग आपकी इस पवित्र कृपा को कभी पा ही नहीं सकेंगे?

उत्तर—नहीं बेटा! ऐसी बात नहीं है, शक्ति तो वे लोग पा सकेंगे, किन्तु उनको अपने आपको अधिकारी बनाना चाहिए। देखो योग–दर्शन में भगवान् पतंजलिदेव जी बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं कि—

तीव्र संवेगानामासन्नः।

व्यास–भाष्य—

समाधि लाभः समाधि फलं च भवतीति।

अर्थात् जिनकी लगन तीव्र है और उपाय भी तीव्र है और उसका प्रयत्न भी तीव्र है, तो

ऐसे व्यक्ति को जल्दी से जल्दी समाधि की प्राप्ति हो जाया करती है और इसके अतिरिक्त जो लोग निम्नाधिकारी हैं, वे भी शनैः–शनैः बढ़ तो जाते हैं, किन्तु अन्तर इतना ही रहता है कि जिसका पिण्डाकार बने हुए गीले वस्त्र को सूर्य की किरणें सुखा तो देती हैं, किन्तु वह शनैः–शनैः उस वस्त्र को सुखा पाती हैं। यदि उसी वस्त्र को पानी से निकाल कर निचोड़कर वायु वाले स्थान में उसको सुखा दिया जाये, तो भगवान भास्कर की तीव्रतम रश्मियाँ बहुत ही जल्दी उसको सुखा डालेंगी। देखो भगवान पतंजलिदेव ने अपने शब्दों के अन्दर अपने योग–दर्शन में इस विषय को बहुत ही स्पष्टीकरण के साथ समझा करके लिख दिया है। पढ़ो समाधि–पाद में 22वाँ योग–सूत्र–

मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः।

व्यास–भाष्य–

मृदुतीव्रो मध्यतीव्रोऽधिमात्रतीव्र इति। ततोऽपि विशेषः। तद्विशेषादपि मृदुतीव्रसंवेगस्याऽऽसन्नः, ततो मध्य–तीव्रसंवेगस्याऽऽसन्नतरः, तस्मादधि–मात्रतीव्रसंवेगस्याधिमात्रोपायस्याप्या सन्नतमः समाधिलाभः समाधिफलं चेति।

अर्थात् अधिकारों के भेद निम्न प्रकार के हैं। तीन प्रकार के अधिकारी होते हैं–मृदुपाय, मध्यपाय एवं अधिमात्रोपाय। इसी प्रकार से तीव्र संवेग, मध्य संवेग, अधिमात्र संवेग। यदि कोई अधिकारी बहुत गाढ़ी लगन का है और संयोगवश उसको कोई शिक्षक भी उत्तम मिल गये हैं और रास्ता भी ऊँचा मिल गया है तो वह बहुत जल्दी अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा और यदि कोई निम्नाधिकारी है और उसका प्रयत्न भी हल्का है और उसको शिक्षक भी साधारण मिल गये हैं तो वह उसको कह दें कि–

राम नाम रटते रहो,
जब लगि घट में प्राण।
कबहूँ तो दीनदयाल के,
भनक पड़ेगी कान।।

अर्थात् वह बेचारा राम–नाम ही रटता रहेगा। जब कभी दीनदयाल के कान में भनक पड़ ही जायेगी, तो उसकी सुनाई हो जायेगी, नहीं तो यूँ ही रटते रहो।

प्रश्न–हे गुरुदेव! क्या राम–नाम रटना अच्छी बात नहीं?

उत्तर–नहीं बेटा! अच्छी बात तो है, किन्तु रामनाम का रटना भी मन की एकाग्रता के बिना विशेष काम नहीं करता। मुख्य बात मन की एकाग्रता की है। मन में एकाग्रता हुई, तो राम–नाम का उच्चारण एक बार में ही सब काम कर देगा, और यदि मन के अन्दर एकाग्रता नहीं है, तो र, म, च, ट, त, ये सभी अक्षर हैं और सभी में आवाज है। शब्द आकाश का

गुण है। आकाश में ही उसका विलय हो जाता है। इसलिए ध्वनि के साथ यदि मन में एकाग्रता है, तो वह फलदायी चीज है। देखो! तुम इस बात को इस प्रकार से समझो। किसी टेप रिकार्डर ने राम–नाम की ध्वनि को टेप कर लिया और मौका पा करके वह उस ध्वनि को बजाने लग गया। उस ध्वनि में से आवाज तो यही निकलेगी–

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।

हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।

इस ध्वनि को सुन करके कोई दूसरा व्यक्ति आकर कहता है कि–ओह! कितनी मनोरम ध्वनि निकल रही है? टेप किये इस रिकॉर्ड की अवश्य मुक्ति हो जायेगी, तो दूसरा व्यक्ति बुद्धिमान तत्काल उसका उत्तर दे देगा, कि अरे भाई! यह तो मशीन है, इसकी क्या मुक्ति हो जायेगी? यह तो स्वयं जड़ है। जड़ पदार्थ की क्या मुक्ति? यदि यह चेतन होता एवं मन की एकाग्रता के साथ इस ध्वनि को उच्चारण करता है और साथ ही 'श्रीराम' का ध्यान भी करता, तो उसकी मुक्ति हो जाती। जड़ पदार्थ की मुक्ति थोड़े ही होती है। इसी प्रकार से यदि कोई भी व्यक्ति जिसकी मस्तिष्क शक्ति केन्द्रित नहीं है, अर्थात् जो पागल हो गया है, वह अपनी पागलपन की धुन में सड़कों पर घूमता हुआ राम नाम का उच्चारण करता है। यह तो केवलमात्र उसकी सनक है। उसके मन में किसी प्रकार की एकाग्रता तो है ही नहीं, इसलिए उसका राम–नाम की ध्वनि का उच्चारण करना उसकी मुक्ति का साधन नहीं।

प्रश्न–तो हे गुरुदेव! इसका अर्थ तो यह हुआ कि राम–नाम के उच्चारण में भी अधिकारी भेद की आवश्यकता है, इस बात को आप कृपा करके उदाहरण के साथ मुझे स्पष्ट करके समझाइये, ताकि मैं विषय को समझ सकूँ एवं उन्नति की ओर प्रगति कर सकूँ।

उत्तर–हाँ बेटा! तुम इस बात को इस प्रकार से समझो। गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी में एक कथा आती है, वह इस प्रकार है। गोस्वामी तुलसीदास जी के सामने काफी सन्त समूह इकट्ठा हुआ और उन सब सन्तों के बीच में एक प्रश्न पैदा हुआ कि राम–नाम की शक्ति से कितने कोढ़ी ठीक हो सकते हैं। उस समाज में आये हुए सभी सन्तों में से किसी ने कहा–मैं दस लाख राम नाम का जप करके एक कोढ़ी को ठीक कर सकता हूँ। उसके बाद दूसरे ने कहा कि मैं पाँच लाख से एक कोढ़ी को ठीक करूँगा। इस प्रकार से विभिन्न प्रकार के वाद–विवाद चलते रहे। यही समस्या गोस्वामी तुलसीदास के समक्ष रखी गई उन्होंने हँसते हुए कहा कि अरे भाई राम–नाम की शक्ति . पाँच लाख और दस लाख का प्रयोजन ही क्या है। यदि एक बार राम–नाम का उच्चारण किया जाये तो जहाँ तक उस राम–नाम की आवाज जायेगी और जितने कोढ़ी उस आवाज को सुन लेंगे वे सभी हजारों

की संख्या में एक साथ ही ठीक हो जायेंगे।

प्रश्न–हे गुरुदेव! इतना अन्तर क्यों, राम–नाम तो एक ही है। एक सन्त दस लाख राम–नाम जप कर एक कोढ़ी को ठीक करता है और गोस्वामी तुलसीदास एक ही बार राम–नाम उच्चारण करने पर हजारों कोढ़ियों को ठीक करते हैं। इतना बड़ा अन्तर क्यों हुआ?

उत्तर–हे पुत्र! र, म, च, ट, त यह सभी वर्णाक्षरी के वर्ण हैं और शब्द आकाश का गुण है आकाश में से शब्द पैदा हुआ करता है। और आकाश में ही उसका विलय होता है। राम नाम भी एक शब्द है उसकी उत्पत्ति भी आकाश में से होती है एवं उसका विलय भी आकाश में ही हो जाता है। इसलिये इसकी सार्थकता मन की एकाग्रता के साथ है। राम–नाम के उच्चारण करने वाले के मन में जितनी एकाग्रता होगी उतनी ही शक्ति उसके उच्चारण में होगी। इसलिये अन्तर्जगत में प्रविष्ट व्यक्ति अपनी मानस एकाग्रता के साथ राम नाम का प्रयोग करेगा उतनी ही शक्ति के साथ यह दूसरों के भले का कारण बनेगा। गोस्वामी तुलसीदास का मन एकाग्र था इसलिये उसके मुख से निकला राम–नाम हजारों के भले का कारण हो सकता था।

प्रश्न–हे गुरुदेव! तुलसीदास का ही मन एकाग्र क्यों था और सब सन्त भी तो राम–नाम का जप करते ही थे, उन सब के मन में एकाग्रता क्यों नहीं आयी और तुलसीदास के ही मन में क्यों एकाग्रता आयी। मन की एकाग्रता तो योग का विषय है। क्या श्री तुलसीदास जी योगी थे? और थे तो कैसे? कैसे और कब–कब उन्होंने योगाभ्यास किया?

उत्तर–हाँ, प्यारे बच्चे! तुम्हारी बुद्धि बहुत अच्छी है। तुम बहुत गहराई के प्रश्न करते हो, हाँ तुलसीदास योगी ही थे। देखो! योग–मार्ग दो प्रकार से चलता है–एक तो मनुष्य साधना करते–करते अपने तीव्रतम् अभ्यास से योग को प्राप्त हो जाये और दूसरा वह व्यक्ति है, जो जप, तप, संयम के आधार पर अपने पुण्यों के खजाने को बढ़ा लेता है, वह सिद्धानुकम्पा से सिद्धयोग का विद्यार्थी बन जाया करता है। गोस्वामी तुलसीदास को भी सिद्धानुग्रह प्राप्त हुआ था।

प्रश्न–हे गुरुदेव! गोस्वामी तुलसीदास तो राम–भक्त थे? उनका सिद्धों और योगियों से क्या सम्पर्क?

उत्तर–हे पुत्र! यह बात तो ठीक है कि गोस्वामी तुलसीदास अवश्य राम–भक्त थे, किन्तु इसके साथ–साथ वे स्वाध्यायशील भी तो थे। तुम यह जानते हो कि हमारा शास्त्रीय सिद्धान्त है कि–''स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः'' अर्थात् स्वाध्यायशील होने से साधक को अपने इष्टदेव की कृपा–लाभ होती है और ऋषि, मुनि एवं देवतागण स्वाध्यायशील

व्यक्ति को दर्शन दे करके उसकी मनोकामना को पूर्ण किया करते हैं।

प्रश्न—हे गुरुदेव! स्वाध्याय किसको कहते हैं?

उत्तर—हे पुत्र! स्वाध्याय के दो अर्थ होते हैं—एक तो प्रणवादि का जप करना। दूसरा वेद शास्त्रों का अध्ययन करना। सो गुसांई तुलसीदास निरन्तर राम—नाम का जप तो करते ही थे और बारह साल तक भगवान् शिव की आराधना भी करते रहे। इसके फलस्वरूप भगवान् शंकर तुलसीदास पर प्रसन्न हुए और उन्होंने प्रकट होकर तुलसीदास से कहा कि तुम वर माँगो। इसके फलस्वरूप तुलसीदास ने श्रीराम को प्राप्त करने का वर मांगा। यह वरदान देकर भगवान् राम ने सिद्धयोग का विद्यार्थी तुलसीदास को बना दिया। उसी दिन से तुलसीदास को भगवान् श्रीराम का साक्षात्कार बना रहने लगा। भगवान् शंकर की कृपा प्राप्त करने के बाद तुलसीदास को भगवान् राम के दर्शन अन्दर और बाहर हर समय होने लगे। इसी का नाम सम्प्रजात योग है।

प्रश्न—हे गुरुदेव! सम्प्रज्ञात योग किसको कहते हैं? मैं सम्प्रज्ञात योग को नहीं समझता? इसलिये हे गुरुदेव! इसके विषय में भी मुझे समझाइये।

उत्तर—हे पुत्र! समाधि के दो रूप माने हैं—सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात। सम्प्रज्ञात समाधि वह समाधि कहलाती है, जिसमें अपवर्ग दाता दृश्य बराबर दृष्टिगोचर होता रहे, इसी रहस्य का संकेत करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि—

या निशा सर्व भूतानां, तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि, सा निशा पश्यतो मुनेः।।

अर्थात् जिस अध्यात्म रूप दिन में संसार वाले सोते रहते हैं, मुनि लोग उसमें जगते रहते हैं एवं संसार के इन झमेलों में बिजनेस आदि के सांसारिक लोग जब जगते रहते हैं तब मुनि लोग सोया करते हैं। इसलिये जिस आध्यात्मिक जगत में मुनि लोग जागते रहते हैं और भीतरी दृश्य को देखते रहते हैं, उसी का नाम सम्प्रज्ञात समाधि है। यह समाधि साधक को शुद्ध सत्वोदय हो जाने के बाद ही प्राप्त हुआ करती है और इस समाधि के द्वारा अन्तर्दृष्टि को प्राप्त किया हुआ साधक अपने आपको शुद्ध प्रकाश में देखता है, इसी का नाम सम्प्रज्ञात समाधि है। यह स्थिति प्राप्त हो जाने के बाद साधक जिस स्थिति में रहता है, उसका दर्शन भगवान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार किया है—

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत।।

अर्थात् जिसके रोम रूपों से हर समय प्रकाश की लहरें निकलें और योगी हर समय

एक शुद्ध प्रकाश में बैठा रहे तो समझ लेना चाहिए कि योगी को सत्वोदय हो गया और वह योगी सम्प्रज्ञात योग की एक भारी स्थिति को प्राप्त हो गया। यह शुद्ध स्थिति प्राप्त हो जाने के बाद योगी सम्प्रज्ञात समाधि में समाधिस्थ हो जाता है। ऐसी स्थिति में शुद्ध प्रकाश के उदय हो जाने पर साधक को अपने इष्टदेव के दर्शन बराबर होने लगते हैं, ऐसे ही गोस्वामी तुलसीदास को भी यह दर्शन बराबर होते रहते थे। इसलिये उनके राम–नाम उच्चारण करने में यह ताकत थी कि एक बार राम–नाम के उच्चारण करने से हजारों पापियों का भला कर सकते थे। यह था मन की एकाग्रता और योग का फल। इसलिये सब प्रकार की साधनाओं का आधार एकमात्र योग ही है।

प्रश्न—हे गुरुदेव! क्या पातंजलि योगदर्शन में इस प्रकार का कोई प्रमाण है, जिसमें मंत्र का जाप एवं उसका ध्यान करना जरूरी हो?

उत्तर—हाँ पुत्र! योग–दर्शन में ऐसे बहुत से प्रमाण हैं। देखो! ईश्वर का दर्शन कर लेने के बाद एवं उसकी सर्व सामर्थ्यता एवं सर्व ज्ञातव्य शक्ति के बतला देने के बाद भगवान पतंजलिदेव ईश्वर का नाम बतलाते हैं। श्री पतंजलि जी कहते हैं कि—

'तस्य वाचकः प्रणवः।'

अर्थात् ईश्वर का बोधक नाम प्रणव है, किन्तु बोधक नाम प्रणव है। इतना कहने–मात्र से काम सिद्ध नहीं हुआ। तत्प्रत्युत् श्री पतंजलि जी को यह कहना पड़ा कि—

तज्जपस्तदर्थभावनम्।

अर्थात् वह ईश्वर का ज्ञान कराने वाले प्रणव नाम को जपते हुये उसके अर्थ का ध्यान भी करना चाहिये। पढ़िये व्यास–भाष्य की पंक्तियाँ—

प्रणवस्य जपः प्रणवाभिधेयस्य चेश्वरस्य भावना, तदस्य योगिनः प्रणवं जपतः प्रणवार्थं च भावयतश्चित्तमेकाग्रं सम्पद्यते, तथा चोक्तं—स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत्।

अर्थात् प्रणव का जप करते हुये एवं प्रणव के अर्थ का ध्यान करते हुये जो मनुष्य योगाभ्यास करता है, उसका चित्त एकाग्र हो जाता है और चित्त के एकाग्र हो जाने के बाद—

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च।

अर्थात् प्रणव का जप करने पर और उसका ध्यान करने पर मनुष्य आत्म–साक्षात्कार को प्राप्त होता है। पढ़िये व्यास भाष्य की पंक्तियाँ—

ये तावदन्तराया व्याधिप्रभृतयस्ते तावदीश्वरप्रणिधानान्न भवन्ति स्वरूप–दर्शनमप्यस्य भवति, यथैवेश्वरः पुरुषः शुद्धः प्रसन्नः केवलोऽनुपसर्गस्तथाऽयमपि बुद्धेः प्रतिसंवेदी

यः पुरुष इत्येवमधिगच्छति।

अर्थात् प्रणव के जप करने पर अर्थात् जप करते हुये ईश्वर को आत्म निवेदन करने पर उस प्रत्युत चेतन की प्राप्ति होती है एवं अन्तराओं की निवृत्ति होती है। व्यासदेव जी महाराज औपनिषदिक सिद्धान्त को ले करके इन्हीं भावों की पुष्टि करते हुए स्पष्टीकरण के साथ लिखते हैं कि–

स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात्स्वा–ध्यायमामनेत्। स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते।

अर्थात् स्वाध्याय करते हुए मनुष्य योगध्यान को प्राप्त करे और योग–ध्यान करते हुए स्वाध्यायार्थ परमात्मा का चिन्तन करे। स्वाध्याय और योग–ध्यान का खजाना जहाँ भरता चला जाता है, वहाँ परमात्मा का प्रकाश अवश्य हो जाता है। भगवान श्रीकृष्ण के शब्दों में–

सर्वद्वाराणि संयम्य मनोहृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणामास्थितो योगधारणाम्।
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।

अर्थात् सब द्वारों पर नियन्त्रण करके व मन को ह्रदय में रोक करके मूर्धा में प्राण प्रवेश करा करके योग–धारणायुक्त योगी ओ३म् अक्षर का उच्चारण करता हुआ और मेरी याद करता हुआ जो शरीर को छोड़कर जाता है, वह परम गति को प्राप्त होता है। आचार्य तपोनिधि के पवित्र उपदेश को सुन करके एवं गुरु–शिष्य की इस प्रकार प्रश्नोत्तरी को सुन करके जिज्ञासु–समुदाय सभी कृतार्थ हो गया। हर्षोल्लास में आ करके आचार्य तपोनिधि की जय, योगाचार्य श्री तपोनिधि जी जय की ध्वनियों से आकाश को गुंजायमान कर दिया। आचार्य पुनः माध्याह्नक नित्य क्रियाओं के लिये पुनः पर्णशाला में प्रवेश कर गये। साधकवृन्द एवं जितनी सन्त–मण्डलियाँ इधर–उधर के आश्रम से आई थीं, वे सभी सत्संग की पवित्र चर्चा करते हुए अपने–अपने आश्रमों को चली गईं एवं गृहस्थी लोग अपने–अपने गृहों को लौट गये। आश्रम के शान्त वातावरण में एक ध्वनि गूँज रही थी। एक प्रकार से आशीर्वाद मिल रहा कि–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मां कश्चिद दुःखाग्भवेत्।।

अर्थात् सभी लोग सुखी रहें। सभी लोग रहित रहें, सभी लोग कल्याण को देखें एवं किसी को किसी प्रकार का भी दुःख न रहे।

अन्तर्राष्ट्रीय-योग दिवस-2021

(आचार्य, श्रीसिद्धगुफा सवांई-आगरा)

विश्व योग दिवस सन् 2015 से विश्व के लगभग 200 देशों में प्रतिवर्ष मनाया जाता है। योग की लोकप्रियता बढ़ने के कारण ही ऐसा हुआ है। योग से ही मनुष्य को शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शांति एवं आत्मिक लाभ मिलता है। इसे अनादिकाल से हमारे ऋषियों ने समझा है। और जीवन में अपनाकर जीवन के अन्तिम-लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त किया है। गीता में कहा गया है-

''युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।'' *(गीता-6/17)*

यदि साधक आहार विहार समुचित मात्रा में तथा उचित समय पर ले, कर्मों के प्रति उसकी चेष्टा उपयुक्त हो, पश्चात् कोई योग साधन करता है तो उस साधक के त्रय तापों का नाश हो जाता है।

आज मनुष्य रोगों से आक्रान्त होता जा रहा है। दवाओं का अधिक प्रयोग साइड इफेक्ट दे रहा है। बीमारियाँ बढ़ रही हैं। ऐसे में वह योग की प्राचीन पद्धति की ओर आकर्षित हुआ है। इसी के परिणामस्वरूप योग को चिकित्सा पद्धति के रूप में अपनाया जा रहा है। योग आसन प्राणायाम आदि अनेक यौगिक उपायों से विभिन्न प्रकार के रोग दूर होते हैं। इसमें कोई संशय की बात नहीं है। घरों में भी लोग इन साधनों का अभ्यास कर रहे हैं और लाभान्वित हो रहे हैं। आयुष मंत्रालय ने भी योग को लोकप्रिय बनाने एवं इससे रोजगार के साधन जुटाने के उद्देश्य से डिप्लोमा, डिग्री देकर नौकरी देने के लक्ष्य को भी सामने रखा है। जो श्यालनीय कदम है।

हमारा श्रीसिद्धगुफा सवांई आश्रम एक प्राचीन योग प्रशिक्षण केन्द्र है जो सैकड़ों वर्ष प्राचीन है। यहाँ पर रोगों की निःशुल्क चिकित्सा होती है। इसके लिये योग आसन, प्राणायाम, नेति धोति आदि षट्कर्म सिखाये एवं कराये जाते हैं। इस शिविर में भी विशेष रूप से नेति एवं धोति क्रिया का अभ्यास कराया जाता है। यहाँ व्यवसाय लक्ष्य नहीं है-परोपकार ही संस्था का लक्ष्य है। अस्तु।

इस वर्ष भी अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस के उपलक्ष्य में एक सप्ताह का विशेष आयोजन एवं प्रशिक्षण रखा गया था। बच्चों में योग में रुचि पैदा करने के लिये उत्तम प्रदर्शन वाले छात्रों को पारितोषिक भी वितरण किये जाते हैं। 21 जून को स्वल्पाहार से पूर्व छात्रों को अष्टांग योग, यम-नियम आदि अंगों के विषय में विस्तार से बताया गया। तत्पश्चात् स्वल्पाहार के साथ सप्तदिवसीय योग शिविर का समापन हुआ।

महा प्रभु रामलाल जी 'रक्षा कवच''

राजेश कुमार सिंह, बलिया, उत्तर प्रदेश (9453040596)

1. संसार कूप में पड़े मुझ असहाय की,
   महा प्रभु रामलाल जी रक्षा करें;
2. सम्पूर्ण भय से श्री चन्द्र मोहन के मन मोहन,
   अणिमा सिद्धि वाले धरती से रक्षा करें;
3. ठाकुर गुलाब सिंह की विनय सुनने वाले,
   लघिमा-गरिमा वाले जल से रक्षा करें;
4. देवरहा बाबा को खेचरी सिद्ध कराने वाले,
   आकाश से मेरी रक्षा करें;
5. हरिहरानन्द जी को सिद्ध बनाने वाले,
   प्राकृतिक आपदाओं से रक्षा करें;
6. मुलखराज जी को तीसरा नेत्र देने वाले,
   दुष्ट ग्रहों से मेरी रक्षा करें;
7. मानक चन्द का तपेदिक हरने वाले,
   शारीरिक कष्टों से रक्षा करें;
8. गोपालानन्द जी के प्रभु पूर्व दिशा में,
   पारस नाथ जी के नाथ पश्चिम में रक्षा करें;
9. रामरती जी के उद्धारक उत्तर दिशा में,
   नृसिंह मूर्ति जी के स्वामी दक्षिण में रक्षा करें;
10. सिद्ध गुफा के ज्योति जग में फैलाने वाले,
    सभी दिशाओं में मेरी रक्षा करें;
11. मन-बुद्धि का योग योगेश्वर,
    जटाधारी प्रभु भूत-वेताल से रक्षा करें;
12. बागमती पति सिर-कपाल की,
    हिमगिरि वासी जिह्वा दंत की रक्षा करें;

13. नाक की रक्षा भागवन्ती लाला,

गंडाराम जी के पुत्र आँखों की रक्षा करें;

14. मुख की रक्षा रिद्धि-सिद्धि के स्वामी,

बीजाक्षरों के अधिपति कानों की रक्षा करें;

15. गले की रक्षा सोलह रूपधारी,

योग साधन को लाने वाले बाहों की रक्षा करें;

16. योग सूर्य प्रकाशक सीने की,

अखण्ड ज्योति प्रभु पीठ की रक्षा करें;

17. कुण्डलिनी अधिपति नाभि की,

षट्चक्रों के वेधक पैरों की रक्षा करें;

18. जीवन तत्व के आविष्कारक,

मेरे सम्पूर्ण शरीर की रक्षा करें;

इति राजेश कृति कवचम् सम्पूर्णम्

काम-भाव को दूर करने का एकमात्र उपाय है, पुरुषों के लिए सब स्त्रियों में मातृभाव और स्त्रियों के लिए सब पुरुषों में सन्तान-भाव का पोषण करना। यह भाव न रहने पर पतन की सम्भावना रहेगी ही। काम को संयत किये बिना और ब्रह्मचर्य रक्षा हुए बिना, मन स्थिर नहीं होता, ठीक-ठीक एकाग्रता और ध्यानावस्था नहीं आती, और भगवान में रागानुगा भक्ति की प्राप्ति नहीं होती।

—स्वामी विराजानन्द

योग-दर्शन में—

ईश्वर का नाम तथा उसका स्वरूप

श्री मानिकचन्द ऊमर वैश्य

ईश्वर के विषय में भगवान् पतंजलिदेव जी से एक जिज्ञासु ने पूछा—प्रधान पुरुष ''व्यतिरिक्त: कोऽयं ईश्वरोनामेति''। अर्थात् प्रकृति पुरुष से भिन्न ईश्वर नाम की यह तीसरी वस्तु क्या है और उसकी परिभाषा क्या है?

''कोऽयं ईश्वरोनामेति'' इसके उत्तर में भगवान् पतंजलिदेव ने उत्तर देते हुए कहा—

क्लेशकर्म: विपाकाशयैरपरामृष्ट: पुरुष विशेष: ईश्वर:।

अर्थात् क्लेश, कर्म विपाकादिकों से अपरामृष्ट पुरुष विशेष का नाम ईश्वर है। परमात्मा तो पुरुष विशेष ईश्वर है ही, लेकिन जीवात्मा भी परमात्मा का अंश होने के नाते पुरुष विशेष है। इन दोनों पुरुषों में भेद इतना ही है कि जीवात्मा, अविद्यादि क्लेश, शुभ, अशुभ कर्म, कर्मों का फल और भोगने की वासना आदि जीवात्मा के साथ सम्बन्ध रखती हैं अर्थात् जीवात्मा में ये सभी बातें पाई जाती हैं। लेकिन परमात्मा इन सभी बातों से परे है। अन्य पुरुषों से परमात्मा पुरुष में जो विशेषता है, वह यह है कि परमात्मा के अन्दर तीनों कालों में इनका स्पर्श नहीं होता, यही अन्य पुरुषों से उस ईश्वर में विशेषता है, ईश्वर सदा ही ईश्वर है और सदा ही मुक्त है। उसके ऐश्वर्य से न किसी का बढ़कर ऐश्वर्य है और न उसके कोई बराबर है। उसमें ऐश्वर्य की पराकाष्ठा है। योगियों का पुरुष-विशेष ईश्वर वही है जिसको आत्म-समर्पण करने से जीवात्मा समाधि-लाभ करता है, फलस्वरूप जीवात्मा ईश्वर तुल्य ऐश्वर्यवान् बन जाता है।

ईश्वर में जैसे ज्ञान की पराकाष्ठा है। उसी प्रकार धर्म, वैराग्य, ऐश्वर्य, यश, श्रीविभूति, सम्पत्ति, सौन्दर्य की भी पराकाष्ठा है। संसार में जो कुछ भी ज्ञान, विज्ञान और सम्भावित ऐश्वर्य है, इस सबकी परमावस्था ईश्वर में है उससे बढ़कर कोई नहीं है।

वह ईश्वर पूर्व में उत्पन्न हुए ब्रह्मादिकों का भी गुरु है, पूर्व में जो शिव, विष्णु, ब्रह्मादि हुए हैं, सबके सब काल के अधीन हैं। उत्पत्ति और प्रलय को प्राप्त होते हैं, लेकिन ईश्वर काल की हद से परे है, वह काल का भी काल है। वह ईश्वर सब उत्पन्न ब्रह्मादिकों का भी गुरु है।

भगवान् पतंजलिदेव जी से अगला प्रश्न और किया गया कि उस ईश्वर का पवित्र नाम क्या है यानी उस ईश्वर का बोधक नाम क्या है? तो इसका उत्तर देते हुए योगाचार्य जी ने

कहा–

तस्य वाचकः प्रणवः

अर्थात् उस ईश्वर का बोधक नाम ओ३म् है।

शास्त्रों में ईश्वर के अनेक नाम कहे हैं और अनेक भाषाओं तथा देशों में ईश्वर के अनेक नाम लिये जाते हैं। परन्तु मूल प्रकृति और ईश्वर का जिस स्थान पर सम्बन्ध है, वहाँ से एक ॐ ध्वनि निरन्तर निकलती रहती है। इस स्वयं निसृत–ध्वनि को योगी लोग ध्यानपूर्वक समाधि अवस्था में सुनते हैं, इसी दिव्य ध्वनि को ईश्वर के स्वयं घोषित नाम को ओंकार कहते हैं। इस ॐ के ही पर्यायवाची अनेक नाम हैं और इसी से अनेक नाम गुणों का ग्रहण होता है। वेद, उपनिषद् आदि सभी ईश्वर का नाम ॐ को ही बताते हैं।

मुमुक्षुजनों को उचित है कि वह 'ओ३म्' नाम से ही ईश्वर की उपासना करें, क्योंकि यही ईश्वर का यथार्थ में अनादि और नित्य व्यापक अर्थ वाला नाम है। अन्य नाम सब गौण और संकीर्ण अर्थ वाले हैं।

कठोपनिषद् में इसे स्वतः सिद्ध प्रणव कहा है–

एतद्धयेवाक्षरं ब्रह्म, ह्योतद्धयेवाक्षरं परम्।
एतद्धयेवाक्षरं ज्ञात्वा, यो यदिच्छति तस्य।।16।।
एतदालम्बनं श्रेष्ठं, एतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा, ब्रह्म लोके महीपते।।17।।

कुण्डलिनी शक्ति की व्यक्त और अव्यक्त तथा व्यापक अवस्था से प्रथम वेद का बीज मन्त्र ओंकार का प्रकाश होता है। ओ३म् के पश्चात् और–और देवी–देवताओं के मन्त्र की रचना होती है। इसलिये कुण्डलिनी शक्ति जागरण होने से साधक को प्रथम ध्वनि रूप–शब्द ओंकार का बोध समाधि में होता है, क्योंकि ओंकार से ही मन्त्र सृष्टि का प्रारम्भ होता है। यह ॐ अक्षर ही ब्रह्म है और यही महाश्रेष्ठ है। इसको जो अपने अन्तरात्मा में स्वतः स्फुरित जानते हैं, उनकी सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण होती हैं। अतएव यह बीज रूप ॐ ब्रह्म है। ऐसा वेद का कथन है।

समस्त वस्तुओं का नाम वाच्यार्थ है परन्तु उनका रूप लक्ष्यार्थ होता है। ऐसे ही ये परम पवित्र ब्रह्म का रूप ॐ जपादि साधन काल में प्रणव नाम से वाच्यार्थ होता है और जप करके स्थिति काल में ब्रह्म का रूप ॐ लक्ष्यार्थ है। इसलिए योग–दर्शन में कहा है–''तस्य–वाचकः प्रणवः।'' प्रणव ईश्वर का वाचक अर्थात् उसके नाम का प्रकाशक है। इसलिए वाच्यार्थ होता है। योग साधन करके अथवा जप साधन करके ईश्वर से मिलने से ॐ लक्ष्यार्थ होता है। अतएव प्रणव नाम है, ॐ वस्तु है। इसलिए पुनः योग–दर्शन में कहा है–

तज्जपस्तदर्थ–भावनम्।

अर्थात् प्रणव जप करते समय अर्थ चिंतन करना भी अवश्य है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि प्रणव नाम है, ॐ वस्तु है। यह ॐ स्वर व्यंजन वर्ण नहीं है। जो वर्ण ही नहीं है वह ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत कैसे हो सकता है। अतएव यह वर्ण रूप 'प्रणव' शब्द नाम वाच्यार्थ है और ध्वनि रूप यह ॐ शब्द लक्ष्यार्थ है। यह हृदय ग्रन्थी भेदी ॐ का विषय योग साधन से अनुभवगम्य है। योग शिखोपनिषद् अध्याय तीन में बताया है–

यन्नमस्यं चिदाख्यातं, यत्सिद्धीनां च कारणम्।
येन विज्ञातमात्रेन जन्म, बन्धात्प्रमुच्यते ।।1।।
अक्षरं परमोनादः शब्द ब्रह्मेति कथ्यते।
मूलाधार गता शक्तिः, स्वाधारा विन्दुरूपिणी।।2।।
तस्यामुत्पद्यते नादः सूक्ष्म बीजा दिवांकरः।
तां पश्यन्ती विदुविश्वं यथा पश्यन्ति योगिनः।।3।।

अर्थात् जो चिदरूप हैं, नमस्कार करने योग्य हैं एवं जो सिद्धियों का कारण है और जिसका विज्ञान जानने मात्र से जीव जन्म–मरण के बन्धन से छूट जाता है। ऐसे अक्षर ॐ की ध्वनि के परम नाद को शब्द ब्रह्म कहते हैं। मूलाधार चक्र में स्थित बिन्दुरूपणी शक्ति से ये ध्वनि रूप ॐ प्रकट होता है। जैसे बीज से अंकुर निकलता है। उस प्रकार ही ओंकार का प्रकाश होता है। इसको साधक मूलाधार में परावाणी तथा नाभि में और पश्यन्ती में अनुभव करना है। श्री याज्ञवल्क्य जी ने प्रणव की अभिव्यक्ति निम्न प्रकार की है।

अद्वष्ट विग्रहो देवो, भाव ग्राह्यो मनोमय।
तस्योंकर स्मृतो नाम, तेना हूतः प्रसीदति।।

अर्थात् उद्वष्ट विग्रह देव जो अव्यक्त है। मन की धारणा से जिसका चिन्तन किया जाता है, उस परम पुरुष का नाम ही ॐ है। ॐ का उच्चारण करने से वह अव्यक्त आत्मा प्रसन्न होता है। ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि के जितने नाम हैं उनका समावेश स्वतः ही प्रणव में हो जाता है।

प्रणवो आचकस्तस्य शिवली परमात्मनः।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

गुरु शरणागति

सद्गुरुदेव का एक अकिंचन बालक—अन्तूराम यादव, इलाहाबाद, 211001

सिद्धेश्वर श्री महाप्रभुजी एवं योग योगेश्वर अनन्त श्री सद्गुरु देव जी के युगल कमलवत् चरणों में प्रणाम करते हुए, कुछ आचार्यों एवं सन्तों की वाणी का उल्लेख करते हुए एक छोटा सा लेख लिखने का प्रयास किया जा रहा है। सद्गुरु देव के प्रति श्रद्धा बढ़े, उनके द्वारा दिये गये ''वचन'' (क्योंकि गुरुदेव प्रवचन नहीं देते थे, वचन देते थे) पर अटूट विश्वास हमारे मन में पैदा हो—इस लेख का यही मुख्य उद्देश्य है।

एक बार भागवत् महापुराण की कथा के दरम्यान एक दिन आदरणीय भगवत् आचार्य जी ने गुरु शरणागति के छः प्रकार का उल्लेख किया था और साथ ही साथ यह भी कहा था कि यदि कोई व्यक्ति इनमें से किसी एक भी प्रकार की शरणागति का भली प्रकार पालन कर ले तो उसका कल्याण निश्चित है। गुरु शरणागति के वे छः प्रकार निम्नांकित हैं—

1. **अनुकूल**—अनुकूल परिस्थिति में तो गुरु—आज्ञा में अवश्य ही रहना।

2. **प्रतिकूल**—प्रतिकूल परिस्थिति में भी श्रद्धापूर्वक गुरु—आज्ञा में ही रहना।

3. **दृढ़ता**—गुरुदेव के वचन पर दृढ़ विश्वास रखना, वे जो कुछ भी कहें हूबहू मान लेना। ऐसा दृढ़ विश्वास रखना कि गुरुदेव सदैव हमारे साथ हैं और वे हर हालत में हमारी रक्षा अवश्य ही करेंगे।

4. **निष्कपटभाव**—गुरुदेव के प्रति हमेशा पारदर्शिता का भाव रखना।

5. **अगोपनीय भाव**—गुरुदेव से कुछ भी छिपाकर न रखना। ऐसा भाव रखना कि हमारे गुरुदेव सर्व समर्थ एवं अन्तर्यामी हैं। वे हमारे अन्दर—बाहर की सब कुछ जानने वाले हैं।

6. **समर्पण भाव**—मन, कर्म, वचन से सदैव गुरुदेव के श्री चरणों में समर्पित रहना।

आज गुरु—शरणागति के उपरोक्त छः प्रकार में से केवल मात्र एक ''**दृढ़ता**'' के विषय में एक ऐसे प्रसंग का उल्लेख किया जायेगा जिससे आदरणीय भगवताचार्य जी की उस बात की पुष्टि हो जायेगी कि गुरु—शरणागति के केवल एक ही प्रकार का भली—भाँति पालन करने पर व्यक्ति का कल्याण हो सकता है। एक समय की बात है—तीर्थ राज प्रयाग इलाहाबाद में कुम्भ पर्व के शुभ अवसर पर अनेक सन्त—महात्माओं के शिविर लगे हुये थे। वहाँ एक राजा का भी शिविर लगा था। राजा की रानी अत्यन्त रूपवती थी। राजा यह नहीं चाहता था कि उसकी रानी पर किसी दूसरे की दृष्टि पड़े इस आशय से रानी को शिविर से बाहर जाने की अनुमति नहीं थी। रानी ने एक दिन राजा से प्रार्थना किया कि महाराज, मैं भी सन्तों के दर्शन करना चाहती हूँ, उनके प्रवचन सुनना चाहती हूँ, परन्तु राजा ने ऐसा

करने से साफ इंकार कर दिया। रानी को बहुत कष्ट हुआ। उसने सोचा कि इतने सुन्दर शरीर से क्या लाभ जब मैं सन्तों के दर्शन भी न कर सकूँ। ईश्वर की भक्ति से संबंधित उनके प्रवचन भी न सुन सकूँ। एक दिन रात के सन्नाटे में धीरे से वह शिविर के पीछे से निकल कर बाहर आई और संगमतट पर पहुँच गई। त्रिवेणी की धारा में प्रवेश करके वह ईश्वर से प्रार्थना करने लगी—"हे ईश्वर! यह शरीर आप की भक्ति में बाधक बन रही है। इसलिए इसे मैं त्याग रही हूँ। कृपया अगला जन्म ऐसा प्रदान कीजिएगा जिससे मैं सन्तों के पास रह सकूँ और आप की भक्ति कर सकूँ।" इतनी प्रार्थना के साथ ही वह त्रिवेणी की तेज धारा में छलांग लगाकर अपना शरीर छोड़ दिया।

गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है कि ईश्वर की भक्ति में अगर कोई भी बाधक बने तो उसे दुश्मन समझ कर त्याग देना चाहिए। चाहे वह अपना कितना ही स्नेही क्यों न हो। ईश्वर की भक्ति में बाधक बनने के कारण भरत ने माँ का, प्रहलाद ने पिता का, विभीषण ने भाई का और राजा बलि ने अपने गुरु तक का परित्याग कर दिया। जीव को सबसे प्यारा अपना शरीर होता है। ईश्वर की भक्ति में बाधक होने के कारण रानी ने अपना शरीर भी त्याग दिया। रानी का अगला जन्म एक कोल–भील परिवार में हुआ जिसका नाम "शबरी" पड़ा। शबरी ईश्वर की कृपा से बचपन से ही आध्यात्मिक प्रवृत्ति की थी। जब वह पन्द्रह–सोलह वर्ष की हुई तो उसके पिता ने उसका विवाह करने का विचार किया। एक दिन उसके पिता ने पचीस–तीस बकरे लाकर घर में बाँध दिया। शबरी ने पूछा–पिता जी इन बकरों का क्या होगा? उसके पिता ने जवाब दिया–बेटी! तुम्हारा विवाह होने वाला है। विवाह के दिन इन बकरों की बलि चढ़ाई जायेगी और इसका प्रसाद सभी लोगों में वितरित किया जायेगा। पिता की इस बात से शबरी बहुत आहत हुई। उसने सोचा मेरे कारण इतने निरापराध मासूम जीवों का वध किया जायेगा। उसी रात में शबरी चुपके से घर से भाग निकली। भागते–भागते वह घर से काफी दूर निकल गई। वह थक कर चूर–चूर हो गई थी। उसे कुछ दूरी पर एकान्त में एक छोटा सा आश्रम दिखाई दिया। वह सहमी–सहमी उस आश्रम में पहुँची। वहाँ उसे एक वयोवृद्ध महात्मा दिखाई दिये। यही थे परम भागवत् मतंग ऋषि जी। शबरी से उन्होंने पूछा–बेटी! तुम कौन हो? कहाँ से आई हो? और मेरे आश्रम में किस उद्देश्य से आई हो? शबरी ने एक–एक करके अपना पूरा वृत्तान्त विस्तार से ऋषिवर को सुनाया।

शबरी की बातों को ध्यान से सुनने के बाद मतंग ऋषि कुछ देर के लिये ध्यानस्थ हो गये। वे अपनी योग–दृष्टि से शबरी के पूर्व जन्म की पूरी बात और ईश्वर के प्रति उसकी भक्ति के बारे में सब कुछ जान गये। वे शबरी को अपनी शिष्या के रूप में स्वीकार करते हुए उसे अभय प्रदान किया और कहा कि अब तुम निश्चिन्त होकर आश्रम की सेवा करो। शबरी तन–मन से निष्ठापूर्वक आश्रम की सेवा में लग गई। कुछ समय के बाद शबरी के गुरुदेव मतंग ऋषि ने इच्छा–मृत्यु का वरण किया। अन्तिम समय में वे शबरी को बुलाकर

कहे कि –बेटी! तुम इस आश्रम को मत छोड़ना। एक दिन इसी आश्रम में भगवान श्री रामचन्द्र जी स्वयं चलकर तुम्हें दर्शन देने आयेंगे और तुम्हारा कल्याण करेंगे। यह कहकर मतंग–ऋषि ने अपना शरीर छोड़ दिया। उस समय शबरी की उम्र लगभग अट्ठारह वर्ष थी और भगवान श्रीराम के अवतार की कौन बात कहे, अयोध्या में उनके जन्म की चर्चा तक नहीं थी। ऋषिवर अन्तर्दृष्टा थे, उन्होंने भविष्यवाणी कर दी थी।

शबरी अपने गुरुदेव के श्री चरणों में पूर्ण समर्पित थी। उसे अपने गुरुदेव के वचन पर इतना विश्वास था कि–''संत वचन पलटे नहीं पलट जाय ब्रह्माण्ड।'' हो सकता है आश्रम में भगवान का आगमन कल ही हो जाये, इस आशय से शबरी आश्रम की कुटिया को लीप–पोत कर साफ करती, यहाँ तक कि जंगल की तरफ से आश्रम की ओर आने वाले रास्ते को भी साफ करती, कंकड़–पत्थर, काँटों को रास्ते से हटाती और जंगल से अनेक प्रकार के फूल ला लाकर उस रास्ते पर बिछाती जिससे भगवान श्री राम के पैर में कंकड़ या काँटे न चुभें। यह कार्य प्रतिदिन की उसकी दिनचर्या बन गया। प्रतिदिन यही कार्य करते, भगवान राम की प्रतीक्षा में दो वर्ष, पाँच वर्ष, दस वर्ष, बीस वर्ष, चालीस वर्ष, अर्थात् वर्ष पर वर्ष बीतते गये। शबरी अपने गुरुदेव के द्वारा दिये गये वचन पर अडिग रही। उसके धैर्य और गुरुदेव के प्रति श्रद्धा में तनिक भी कमी नहीं आई। एक साधारण व्यक्ति होता तो दस–पाँच वर्ष में ही हिम्मत हार जाता और कह देता कि गुरुदेव ऐसे ही कह दिये होंगे, भगवान श्रीराम का कहीं अता–पता नहीं। परन्तु वाह रे शबरी की अपने गुरुदेव के प्रति श्रद्धा और उनके वचन पर अटूट विश्वास। चट्टान की तरह शबरी अपने गुरुदेव के वचन पर डटी रही और अपने धैर्य का अनूठा उदाहरण पेश करते हुए शबरी को यह कार्य करते और भगवान श्रीराम के आगमन की प्रतीक्षा में पूरे साठ वर्ष बीत गये। शबरी बूढ़ी हो गई। आखिर वह शुभ घड़ी आ ही गई। भगवान श्रीराम मतंग ऋषि के आश्रम में पधारे और शबरी की भक्ति पर अत्यन्त प्रसन्न होकर उसका उद्धार किये। उस समय शबरी की उम्र अठहत्तर (78) वर्ष की थी। यह है गुरुदेव के वचन पर दृढ़तापूर्वक अटूट विश्वास करने का फल। भक्त को भगवान के पास नहीं जाना पड़ा बल्कि भगवान को खुद चलकर भक्त के कल्याण के लिए उसके पास आना पड़ा।

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि साधक के लिये साधना के संबंध में गुरुदेव का आदेश कुछ होता है और हम कुछ और करते हुए नजर आते हैं। ऐसा न करके शबरी की तरह हमें भी अपने गुरुदेव के प्रति श्रद्धा और उनके वचन पर अटूट विश्वास करते हुए उनके बताये हुये रास्ते पर धैर्यपूर्वक चलते रहना चाहिए। अब आदरणीय भगवताचार्य जी के द्वारा कहे गये एक शेर के साथ मैं अपनी लेखनी को विराम देता हूँ–

''हम जिन्दगी भर यही करते रहे, धूल चेहरे पर थी और दर्पण साफ करते रहे।।''

सादर जय गुरुदेव।

ज्योतिष-शास्त्र में सिद्धयोग

श्री सूरजप्रकाश

वशिष्ठ जी ने कहा है कि–

उद्वाहलग्नवशतो गुणवृत्तलब्धि

अर्थात् विवाहादि के मुहूर्त से गुण, चरित्र प्राप्त होते हैं। यदि आप कहें कि जन्म–काल के ग्रहों के अनुसार जो फल होने वाला है वह तो होगा ही, तो ऐसा नहीं है। कारण–

ज्योतिषस्मृत्यावेदित शुभसमयारब्ध विधि जन्यापूर्वजनित शुभफलेन जन्मान्तरीय दुरदृष्टध्वंसो भवति।

अर्थात् ज्योतिष स्मृति के कहे हुए शुभ समय में कर्त्तव्य–पालन करने से पुण्य उत्पन्न होता है, वह पुण्य पूर्व जन्म के अशुभ फल को नाश कर शुभ फल प्राप्त करता है, यही मुहूर्त में काम करने का मुख्य उपयोग है।

ज्योतिष में अनेक शुभ मुहूर्त तथा योग काल हैं, जिसमें एक सिद्धकाल भी है। सिद्धयोग, सर्वार्थ सिद्धयोगों के अतिरिक्त पुष्य नक्षत्र का नाम भी सिद्ध नक्षत्र कहा गया है।

सिध्यन्ति अस्मिन् सर्वाणि, कार्याणि इति सिध्यः।
पुष्यन्ति अस्मिन् सर्वाणि, कार्याणि इति पुष्यः॥

पाणिनीय शास्त्र के अनुसार भी–

पुष्यसिद्धयौ नक्षत्र। *(3/1/113)*

इस तरह "पुषपुष्टौ" (पुष्टि पोषणम्) तथा सिध् धातु में 'क्यच्' प्रत्यय करने से 'पुष्य' एवं 'सिध्यः' एक ही अर्थ में ये दोनों शब्द बनते हैं। इस प्रकार अत्यन्त प्रसिद्ध होने से व्याकरण संहिता तथा तन्त्र मन्त्र ग्रन्थों में भी इसका सुस्पष्ट वर्णन मिलता है। यदि गुरुवार को पुष्य नक्षत्र हो, तो श्रेष्ठ तथा पूर्ण सिद्धयोग होता है–

गुरौ पुष्यसमायोगे सिद्धयोगः प्रकीर्तितः

महाभारत, वाल्मीकि रामायण, पुराणों, स्मृति तथा अन्य ग्रन्थों में भी पुष्य नक्षत्र की महत्ता विख्यात है। ज्योतिष शास्त्रों में भी कहा है–

सर्वसिद्धिकरः पुष्यः, करग्रहं बिना सर्व कर्म देवेज्यमे शुभम्।

(मु. चिन्तामणि)

प्रसिद्ध कवियों ने भी "पुष्य" की महिमा बताई है। महाकवि श्री भट्ट जी लिखते हैं कि सर्वार्थसिद्धिप्रद पुष्य नक्षत्र के समान ही जो योगसिद्धा तथा सर्वसिद्धा थी, उस शबरी

के पास लक्ष्मण जी के साथ प्रभु श्री राम जी जा पहुँचे–

सिध्यतारामिव ख्यातां शबरीमापतुर्वने *(भट्ट–काव्य 6/59)*

महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंश के सत्तारवें सर्ग के बत्तीसवें श्लोक में वर्णन करते हैं कि भगवान् राम के वंश में एक ''पुष्य'' नामक राजा का जन्म हुआ। यथा–

तस्त प्रभानिर्जित पुष्यरागं, पौष्यां तिथौ पुष्यमसूत पत्नी।
तस्मिन्नपुष्यन्नुदिते समग्रां, पुष्टिं जन्मः पुष्य इव द्वितये।।

इसमें कवि ने 'पुष्य' को छः बार प्रयोग किया है। इससे स्पष्ट है कि पुष्य नक्षत्र से कवि का किसी रहस्यमय सम्बन्ध का ज्ञान होता है।

पुष्यः परकृतं हन्ति, न तु पुष्यकृतं परः।
अपि द्वादशगे चन्द्रे, पुष्यः सर्वार्थसाधकः।

अर्थात् सभी दुष्ट योगों में भी पुष्यकृत कार्य निस्संदेह सिद्ध हो जाता है। पुष्य नक्षत्र अन्य योग–नक्षत्रों के दोष को भी दूर करता है, किन्तु पुष्य के गुण किसी भी दुर्योग आदि द्वारा नष्ट नहीं होते। अतः पुष्य नक्षत्र मे सभी शान्ति–पोष्टिक, सौभाग्य एवं वशीकरण प्रयोग सिद्ध होते हैं। पुष्य नक्षत्र में बनगामी और चिच्चेड़े की जड़े उखाड़कर माथे पर धारण करने से सभी वाद–विवादों में विजय प्राप्त होती है। इस नक्षत्र–काल में मालिश करने से अनेक चर्म रोग जाते रहते हैं। इसी नक्षत्र में कटैया की जड़ लेकर दायें बाजू पर बांधने से सौभाग्य की वृद्धि होती है। बृहस्पतिवार को या दशवीं तिथि को यह नक्षत्र पड़े तो सारे मणि मन्त्र, शिल्प, औषधि, कला, ज्ञान, विद्या तथा अनुष्ठान पौष्टिक कार्यों की सिद्धि करने वाला है–

पौष्यद्वये पुष्यचतुष्टये च श्राद्धप्रदाता बहुपुत्रवान् स्यात्। (नारद स. 36/20)

अर्थात् पुष्य नक्षत्र में किये गये श्राद्ध से पितरों की भी अक्षय तृप्ति होती है और प्रदाता को धन–पुत्र की प्राप्ति होती है। लेख के विस्तार के भय से यहाँ ज्यादा प्रयोग नहीं लिखे गये हैं। ज्योतिष शास्त्र तथा आयुर्वेद में बहुत अन्य पुष्टिकर प्रयोग बताये हैं। फिर कभी दूसरे लेखों यदा–कदा शास्त्रों के अनुसार अनुभव किये प्रयोग भी वर्णन करेंगे। हमें कोई नई बात नहीं कहनी है, महान् सिद्धियों के मालिक हमारे पूर्वजों ने सब कुछ हमारे लिए लेखनी द्वारा शास्त्र, पुराणों में संकेत किये हैं। हमें केवल मात्र उन्हीं की आज्ञानुसार बर्तना है। ऐसा करने से हम सदा सुखी रहकर अन्त में परम–पद को प्राप्त करने के अधिकारी बन सकते हैं।

मनमाने निषिद्ध समय में काम करने से शुभ फल तो मिलता ही नहीं, पाप–मात्र होता है वेद जिसे करो कहता है वह विधि है तथा जिसे मत करो कहता है वह निषेध है। यह विधि माननी ही चाहिए तथा निषेद से तो बचना ही चाहिए।

कर्माशय और उसका भोग–

प्रधानकर्मण्यावापगमनम्। यत्रेदमुक्तं ''स्यात् स्वल्पः सङ्करः सपरिहारः स

प्रत्यवमर्शः, कुशलस्य नापकर्षायालं। कस्मात् कुशल हि मे बह्वन्यदस्ति नायमावापं गतः स्वर्गेप्यपकर्षमल्पं करिष्यति इति।

नियतविपाकप्रधानकर्मणाऽभिभूतस्य वा चिरमवस्थानम्। कथमिति, अदृष्टजन्मवेदनीयस्यैव नियतविपाकस्य कर्मणः समानं मरणमभिव्यक्तिकारणमुक्तं। न त्वदृष्टजन्मवेदनीयस्यानियत विपाकस्य। यत्त्वदृष्टजन्मवेदनीय कर्मानियतविपाकं तन्नश्येद् आवापं वा गच्छेद् अभिभूत वा चिरमप्युपासीत यावत्समानं कर्माभिव्यञ्जकं निमित्तमस्य न विपाकाभिमुखं करोति इति। तद्विपाकस्यैव देशकालनिमित्तानवधारणादियं कर्मगतिर्विचित्रा दुर्विज्ञाना चेति। न चोत्सर्गस्यापवादान्निवृत्तिरितिएकभविकः कर्माशयोऽनुज्ञाय्रत इति।।।3।।

अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पाँचों क्लेश जिस मनुष्य के मन में वर्तमान रहते हैं। तभी मनुष्य का कर्माशय कर्मफल के भोग देने में समर्थ वाला होता है। तभी जो कर्माशय जिसके क्लेश–भोग कट चुके हैं, वह कर्माशय कर्मफल का देने वाला नहीं हो सकता। भगवान् व्यासदेव जी उदाहरण देकर समझाते हैं कि जिस प्रकार से तुषों सहित चावल अदग्ध बीजभाव हुआ करते हैं, वही खेती में उपज के लायक हुआ करते हैं और जो चावल दग्ध–बीजभाव वाले हो जाया करते हैं। अर्थात् जिनका छिल्लड़ धानकुटे से कूट–कूटकर उतार दिया जाता है। ऐसे तुषरहित चावल, क्योंकि उनका बीजभाव दग्ध हो चुका है। ऐसे चावल खेती में डाल भी दिये जायें, तो वह कभी भी पैदा नहीं हुआ करते। ठीक इसी प्रकार से क्लेशों से घिरा हुआ क्लेशावलब्ध कर्माशय कर्म–विपाक का देने वाला हुआ करता है न कि नष्ट क्लेश वाला कर्माशय कर्म–विपाक को दे सकता है। इसी प्रकार से जो कर्माशय दग्धक्लेश बीजभाव को प्राप्त हो जाता है, वह कर्माशय कर्मभोग का दाता नहीं हुआ करता। क्लेश–मूलक कर्माशय तीन प्रकार से कर्मभोग दिया करता है और वह पहले जाति को देता है, आयु का विधान करता है, उसके बाद कर्मों के भोग को दिया करता है। यहाँ पर एक बात विचार करने योग्य है–

1– पहली बात यह है कि क्या एक कर्म एक जन्म का कारण होता है या एक कर्म अनेक जन्मों के जीने का कारण हुआ करता है?

2– दूसरी विचारने योग्य बात यह है, क्या अनेक कर्म अनेक जन्मों के दाता होते हैं या अनेक कर्म एक ही जन्म में मिट जाया करते हैं?

इसका उत्तर इस प्रकार से है–अर्थात् एक कर्म अनेक जन्मों का कारण नहीं हो सकता, क्योंकि अनादि काल से प्रचय किये हुए कर्म कर्माशय में पड़े रहा करते हैं। यदि एक ही कर्म अनेक जन्मों के भोग का कारण बनेगा तो बाकी के अनन्त काल से निर्माण किये हुए कर्म बचे रहेंगे। अर्थात् उनका भोग काल आयेगा ही नहीं और ऐसा होने से कर्मकाण्डी लोगों में बड़ा ही अविश्वास पैदा हो जायेगा और लोगों में इस प्रकार का

अविश्वास आ जाने से बड़ा भारी अनिष्ट होगा। और इस प्रकार से एक कर्म अनेक जन्मों के भोग का कारण नहीं हो सकता। क्योंकि बाकी के अवशेष कर्मों के भोगकाल का अभाव ही रहेगा। इसलिए यह बड़ी ही अनिष्ट की बात है और यदि यह कहा जाये कि अनेक कर्म अनेक जन्मों के कारण होते हैं तो वह भी बात नहीं बन सकती, क्योंकि अनेक कर्मों के फलस्वरूप अनेक जन्म एक साथ नहीं हो सकते। और यह कहा जाये कि उन कर्मों का फल क्रमशः एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा इस प्रकार से बहुत ही लम्बा भुगतान चल पड़ेगा। इसमें भी यही पहले वाली बात सामने आयेगी। इसलिये जन्म–जन्मान्तर में पुण्यापुण्य कर्माशय प्रचय एक प्रधान कर्म के उपसर्जनीभूत (सहयोगी) एक बहुत बड़े कर्म–समूह को मिला करके एक ही जन्म का कारण बनता है अर्थात् एक कर्म समुच्चय के अन्दर एक प्रधान कर्म और अनेक कर्मों को साथ लगाकर एक जन्म का कारण बनता है और वह जन्म उस कर्म समुच्चय को साथ लेकर जन्म देने वाला वह कर्म आयु को प्राप्त करता है। उस कर्म से दी हुई उसी आयु के अन्दर, उस ही कर्म के द्वारा कर्म का भोग उपस्थित होता है। अतः यह बात निश्चित हुई कि मनुष्य का वह कर्माशय जन्म आयु और भोग का कारण होने से त्रिविपाक वाला कहा जाता है। इसलिये यह बात निश्चित हो गई कि प्रधान का उपसर्जनीभूत एक कर्माशय ही एक जन्म का कारण होता है और ऊपर हम जिस दृश्यजन्मसंवेदनीय कर्माशय का वर्णन कर आये हैं वह एक विपाक का कारण होता है—कर्म भोग के कारण और दो विपाक का आरम्भ करता है आयु और भोग के कारण जैसे हम ऊपर जहां पर दृष्टादृश्य जन्म संवेदनीय कर्माशयों में नन्दीश्वर और नहुस का वर्णन कर आये। उसी प्रकार यहाँ पर भी है। इस बात को इस प्रकार समझ लें, जिस प्रकार नन्दीश्वर पहले मनुष्य रूप में था और वह कृपा–विशेष से सदेह स्वर्ग को चला गया इसमें उसको दो वस्तु प्राप्त हुईं। 1–देवलोक की आयु, 2–देवलोक के भोग। इसी प्रकार से राजा नहुस को भी तीन वस्तुयें प्राप्त हुईं—1–तिर्य्यक योनि का शरीर, उसकी आयु और भोग। इस सन्देश को इस प्रकार समझ लेना चाहिये कि अनन्तकालीन क्लेशकर्म वासनाओं के द्वारा मूर्च्छित किया हुआ यह चित्त चारों ओर से मछली पकड़ने वाले जाल की तरह से घिरा हुआ अनेक जन्मों में होने वाली वासनाओं और संस्कारों के कारण ये कर्माशय एक भवित हुआ और जो संस्कार और स्मृति के कारण हैं, वे सारी की सारी वासनाएँ अनादि कालीन हैं। वह कर्माशय है तो एक ही जन्म का दाता, किन्तु नियत कर्म विपाक और अनियत कर्म विपास के भेद से दो प्रकार का है। वहाँ पर अदृष्ट जन्म संवेदनीय नियत कर्म विपाक के लिए यह नियम है और अदृश्य जन्म वेदनीय अनियत कर्म विपा के लिए नहीं है। क्योंकि अदृश्य जन्म संवेदनीय कर्माशय अनियत कर्म–विपाक की तीन गतियाँ होती हैं—

1–किये हुए कर्म विपाक का नाश हो जाये अथवा किसी प्रधान तीव्र कर्म के साथ

उसका भी भुगतान हो जाये या नियत कर्म विपाक इतना प्रबल हो कि वह कर्म प्रसुप्तावस्था में ही पड़े रहें। इस बात को यूँ समझ लेना चाहिए। कृतकर्म विपाक का नाश जैसे वहाँ पर कोई तीव्रतम पुण्य कर्म के भोग काल में वैसे ही नाश हो जाये जैसे प्रकाश के अन्दर अन्धेरा नहीं रहता। इसी प्रकार से पापकर्मों के बारे में भी समझ लेना चाहिए। यदि कोई मनुष्य घोर कर्मों का पाप भोग रहा है, उस काल में यदि कोई छोटा–मोटा पुण्य–कर्म हो जाये, तो उन पाप–कर्मों की अग्नि में जलकर भस्म हो जाया करता है। मुख्य बात तो यह रही, इसके अतिरिक्त यह भी हो सकता है कि नियत कर्म विपाक प्रधान कर्म से अभिभूत होकर प्रसुप्तावस्था में उभय कर्म बहुत देर तक पड़े रहें। कहने का अभिप्राय केवलमात्र एक है कि अदृष्टजन्म संवेदनीय नियत कर्म विपाक के समान उसके प्रकट करने के कारण मृत्यु को कहा है। इस प्रकार अदृष्टजन्मवेदनीय नियत कर्म विपाक का नहीं और जो अदृष्टजन्म वेदनीय कर्म जिनका अनियमित कर्म विपाक है, वह खतम हो जाता है या विलीन हो जाया करता है या बहुत देर तक प्रधान कर्म की सहायता चाहने वाला पड़ा रहा करता है। जब तक उसका अभिव्यंजक कर्म निमित्त बनकर उसके विपाक को प्रगट नहीं करता, वह कर्म विपाक देशकाल निमित्त को धारण करने से यह कर्मगति बहुत ही विचित्र है और जानी नहीं जा सकती औ< न ही इसकी उत्सर्ग बिना निवृत्ति ही हो पाती है। भगवान पतंजलिदेव आदेश करते हैं–

ते ह्लादपरितापफला: पुण्यापुण्य–हेतुत्वाद् —साधनपाद 14

अर्थात् वे कर्म सुख और दु:ख को देने वाले हैं पुण्य और पाप के होने के नाते इन्हीं भावों को भगवान व्यासदेव जी इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

ते जन्मायुर्भोगा: पुण्यहेतुका: सुखफला अपुण्यहेतुका दु:खफला इति। यथा चेदं दु:खप्रतिकूलात्मकमेवं विषयसुखकालेऽपि दु:खस्त्येव प्रतिकूलात्मकं योगिन:।।।4।।

अर्थात् जन्म, आयु और भोग यदि पुण्यरूप हों तो वे सुखरूप फल के दाता हुआ करते हैं और पाप–फल हो तो दु:ख फल के दाता हुआ करते हैं। किन्तु कुछ भी हो यह वासना रूप सुख भी योगी के लिए प्रतिकूलात्मक ही है, इसलिये साधक को चाहिये कि योगाभ्यास द्वारा कर्म–विमुक्ति के चरम लक्ष्य निर्बीज समाधि तक अपने आपको ले जाये तभी कर्म–बन्धन से मुक्त हो सकता है। वैसे तो यह नियम है कि लोहे से लोहे का भेदन होता है। लोहे कि आरी लोहे को काट डालती है। इस सिद्धान्त के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण अपनी श्रीमद्भगवद्गीता में आदेश करते हैं कि–

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।।
न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवश: कर्म सर्व: प्रकृतिजैर्गुणै:।।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।।
यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते।।
नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणाः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणाः।। *(गीता 3/4 से 8 तक)*

अर्थात् कोई भी व्यक्ति बिना कर्मों के आरम्भ किये निष्काम कर्मयोगिता को प्राप्त नहीं हो सकता। कर्मों को छोड़कर बैठ जाने से भी सिद्धि को प्राप्त नहीं हो सकता। संसार में जन्म लेकर कोई भी व्यक्ति कर्म किये बिना रह ही नहीं सकता। मनुष्य को प्रकृति के वश में होकर स्वभाव से कर्म करने ही पड़ते है, कदाचित कोई व्यक्ति कर्मेन्द्रियों पर नियन्त्रण करके बैठा रहता है और मन से उन कर्मेन्द्रियों के वासनारूप अर्थ का चिन्तन करता रहता है। वह व्यक्ति मिथ्याचारी कहलाते हैं और इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति मन से इन्द्रियों पर नियन्त्रण करके कर्मेन्द्रियों के द्वारा कर्मासक्ति को छोड़कर कर्म करता रहता है, वह ठीक है। ये सब बातें समझाकर भगवान भी अर्जुन को आदेश देते हैं–हे अर्जुन! तुम कर्म तो करो, किन्तु कर्मफल की आसक्ति को छोड़कर कर्म करो। क्योंकि बिना कर्म किये तो तुम्हारे शरीर का निर्वाह भी नहीं हो सकता। आगे चल करके भगवान जनकादि का उदाहरण दे करके अर्जुन को समझाते हैं–

कर्मणीव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रह मेवापि, संपश्यन्कर्तुमर्हसि।।
यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्त, देवेत्तरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते, लोकस्तदनुवर्तते।।

अर्थात् वैसे लोक व्यवहार को देखकर भी कर्म करना ही चाहिए, क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष जो भी आचरण करता है, वही सब आचरण और लोग भी किया करते हैं, वह जिस वस्तु को प्रमाण मानता है, उसी को सब लोग भी माना करते हैं। इससे आगे भगवान् अपना उदाहरण दे करके कर्मयोग की निष्कामता को समझाते हुए कहते हैं–

न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं, त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं, वर्त एव च कर्माणि।।
यदि ह्यहं न वर्तेयं, जातु कर्मणयलन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते, मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।
उत्सीदेयुरिमे लोका न, कुर्या कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः।।

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो, यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोक संग्रहम्।।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं कि—हे अर्जुन! तीन लोकों में मेरा कुछ भी कर्तव्य बाकी नहीं है और न ही कोई ऐसी वस्तु, जिसे मैंने प्राप्त न किया हो, फिर भी मैं कर्म करता रहता हूँ। कदाचित् मैं आलस्य छोड़कर कर्म न करूँ, तो संसार के विनाश का कारण मैं बन जाऊँगा और वर्णसंकर का कारण बन जाऊँगा, क्योंकि सभी लोक मेरे रास्ते पर चलते हैं, इसलिए जैसे मूर्ख लोग कर्मफल में आसक्ति रखकर कर्म करते हैं। इसी प्रकार विद्वानों को कर्मफल की आसक्ति छोड़कर कर्म करते रहना चाहिए। क्योंकि सभी संसार श्रेष्ठ पुरुषों के पीछे चला करता है। इसलिए मनुष्य को कर्म करते हुए ही निष्काम कर्मयोग को प्राप्त होना चाहिए। जो लोग नियमित रूप से कर्म करते रहते हैं, वह कालान्तर में निष्कामता को जरूर प्राप्त कर जाते हैं—

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः।।
यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन्।।
आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणसुच्यते।।

अर्थात् कर्मफल की आसक्ति को छोड़कर कर्म करते रहते हैं वही संन्यासी हैं और वही योगी। जो अक्रिय हैं और निरग्नि हैं वह न संन्यासी हैं और न ही योगी ही हैं। हे अर्जुन जिसको संन्यास कहा गया है उसे तुम योग ही जानो क्योंकि जिसने सारे संकल्पों का नाश नहीं किया वह योगी भी नहीं हो सकता। योगारूढ़ होने के लिए पहले मनुष्य को कर्म करना ही पड़ता है और योगारूढ़ हो जाने के बाद वह योगी निर्वाण—परमशान्ति को प्राप्त हो सकता है। इसलिये साधक को चाहिए कि वह दृश्यजन्मसंवेदनीय नियत कर्म विपाक तो करता रहे किन्तु अपने आपको निरन्तर अभ्यास करते हुए निर्बीज समाधि तक ले जाये जहाँ पहुँचकर कोई मायिक बीज रहता ही नहीं। तभी मनुष्य कर्माशय और अपने भोग से मुक्ति पा सकेगा। ऐसी स्थिति को पाकर मनुष्य जन्म—मरण के चक्कर से छूट जाया करता है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुख भाग्भवेत्।।

श्रेय-मार्ग और प्रेय-मार्ग

श्री पूर्णाचन्द्र पन्त शास्त्री

वेदों में सुख के दो साधन बताये गये हैं श्रेय और प्रेय। सब प्रकार के दुःखों से छूटकर सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमेश्वर को प्राप्त करने का उपाय श्रेय-मार्ग कहलाता है।

इन्द्रियों को प्रिय लगने वाले पदार्थों-धन, मान, पद, प्रतिष्ठा, स्त्री, पुत्र आदि को ही सुख का साधन समझकर ममतापूर्वक उनके संग्रह, रक्षा एवं वृद्धि के लिये सदैव प्रयत्नशील रहना प्रेय-मार्ग कहलाता है।

संसार में जन्म लेने वाला प्रत्येक प्राणी जन्म-जन्मान्तर के संस्कारवश स्वाभाविक ही इस मार्ग का अनुगामी बना रहता है। अन्य प्राणियों की भांति मनुष्य भी बाह्य विषयभोगों की चमक-दमक और आपातरमणीयता पर मोहित होकर उनको पाने और भोगने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझता हुआ अपना अमूल्य जीवन खो देता है।

यह प्रेय-मार्ग मनुष्य के बन्धन का मार्ग है। क्योंकि इस मार्ग के अवलम्बी व्यक्तियों में अधिकांश व्यक्ति तो ईश्वर, शास्त्र एवं महापुरुषों में अविश्वास रखते हुए धर्म-विमुख रहा करते हैं। शेष जो आस्तिक वृत्ति के होते हैं वे भी लोक-परलोक की भोग सामग्रियों में आसक्त होकर उनकी प्राप्ति के लिये ही सकाम भाव से देव-पितर आदि की उपासना करते हैं। ऐसे व्यक्ति कभी भी कल्याण के भागी नहीं बन पाते। ईशावास्योपनिषद के 12वें मन्त्र में कहा गया है-

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः।।

अर्थात् जो मनुष्य विनाशशील स्त्री, पुत्र, धन आदि लोक और परलोक की भोग-सामग्री की प्राप्ति के लिये विनाशशील देवता पितर एवं मनुष्यादि की उपासना करते हैं वे अज्ञान रूप घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं और जो अविनाशी परमेश्वर की उपासना के मिथ्याभिमान में रत होकर निष्क्रिय बने रहते हैं वे उनसे भी अधिक अन्धकार में प्रवेश करते हैं। अर्थात् मरणोपरान्त शूकर-कूकर आदि निम्नतम् योनियों में प्राप्त होते हैं।

कठोपनिषद के निम्नलिखित मन्त्रों में प्रेयमार्ग की निन्दा तथा उसके अनुगामी मनुष्यों की दुर्गति का वर्णन करते हुए कहा गया है-

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।
जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढाः, अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः।।

अविद्याग्रस्त रहते हुए भी जो अपने आपको बुद्धिमान और विद्वान् समझते हैं तथा विद्या, बुद्धि के मिथ्याभिमान में शास्त्र और महापुरुषों के वचनों की अवहेलना करके मनमाना आचरण करते हैं। वे भोगों में आसक्त मूर्ख लोग नाना योनियों में भटकते हुए ठीक वैसे ही ठोकरें खाते रहते हैं। जैसे-अन्धे व्यक्ति द्वारा चलाये जाने वाले अन्धे अपने लक्ष्य तक न पहुँचकर बीच में ही भटकते हुए नाना प्रकार के कष्ट भोगते हैं।

न साम्परायः प्रतिभाति बालम् प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।

अयं लोको नास्ति पर इति मानी, पुनर्पुनर्वशमापद्यते मे।।

धन–सम्पत्ति के मोह से मोहित तथा प्रमाद पूर्वक मनमाना आचरण करने वाले भोगासक्त व्यक्ति को परलोक नहीं सूझता। यह समझता है कि जो कुछ है यही लोक है। इसके अतिरिक्त स्वर्ग–नरक आदि कुछ भी नहीं है। ऐसा मानने वाला अभिमानी व्यक्ति बार–बार यमराज के चंगुल में पड़कर अपने कर्मानुसार नाना योनियों में भटकता रहता है।

प्रेय–मार्ग को महत्त्व देने वाले व्यक्ति शास्त्रों की अवहेलना करते हुए उपासना रहित सकाम कर्मों (सांसारिक धन्धों) में ही लगे रहते हैं। यदि वे किसी प्रकार का पुण्य–कृत्य करते भी हैं तो सकाम भाव से और अहंकार–पूर्वक करते हैं। उपरोक्त दोनों श्रेणियों के व्यक्ति मरने के बाद परमात्मा को न पाकर निम्न लोकों में जाते हैं। इस बात की पुष्टि मुण्डकोपनिषद् में भी की गई है–

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना, वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्तिबाला।
यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्, तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते।।

भोगों की प्राप्ति के लिये सांसारिक उन्नति के साधन–रूप नाना प्रकार के सकाम कर्मों में आसक्तिपूर्वक लगे रहने वाले मूर्ख लोग ऐसा अभिमान कर लेते हैं कि–हमने सब कुछ कर लिया है और हम कृतार्थ हो गये हैं। भोगों में अत्यन्त आसक्ति के कारण वे कल्याण के यथार्थ मार्ग को जान ही नहीं पाते। इस कारण बार–बार पुण्योपार्जित लोकों से हटाये, जाकर निम्न लोकों में गिरते हैं–

इष्टपूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं, नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः।
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमंलोकं हीनतरं वा विशन्ति।।

यज्ञादि वेद–विहित कर्मों को तथा कुआं खुदवाना, बावड़ी बनवाना, बगीचा लगाना आदि स्मृतिविहित सकाम कर्मों को करने वाले मूर्ख लोग उन्हीं कर्मों को ही कल्याण का सर्वश्रेष्ठ साधन मानते हैं। उनसे भिन्न वास्तविक श्रेय–साधन अर्थात् परमेश्वर का भजन, ध्यान एवं निष्काम कर्म आदि से वे अनभिज्ञ रहते हैं। अतः पुण्यों के फलस्वरूप स्वर्गलोक में जाकर वहाँ के भोगों को भोगकर पुण्य क्षीण होने पर पुनः इस मनुष्य लोक में या इससे भी अत्यन्त नीच योनियों–शूकर–कूकर, कीट–पतंग आदि योनियों में अथवा रौरव–कुम्भीपाक आदि घोर नरकों में जाते हैं। इस प्रकार लौकिक सुख–साधनों तथा स्वर्गादि लोकों को ही महत्त्व देते हुए ममतापूर्वक सकाम कर्मों को करने वाले व्यक्ति भले ही ज्ञानी और पुण्यात्मा होने के मिथ्याभिमान में क्यों न रहें, वे परम कल्याण के भगी नहीं बन पाते। कल्याण का वास्तविक साधन तो योग है, जिसे शास्त्रों में श्रेय–मार्ग कहा है। कठोपनिषद् में श्रेय और प्रेय इन दोनों मार्गों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि श्रेय–मार्ग ही आत्मोद्धार का एकमात्र साधन है–

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते, उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति, हीयते अर्थाद्यउप्रेयो वृणीते।।

कल्याण का साधन अलग है और प्रिय लगने वाले भोग–पदार्थों का साधन अलग ही है। इस प्रकार अपने–अपने ढंग से मनुष्य को सुख पहुँचा सकने वाले ये दोनों साधन मनुष्य को अपनी–अपनी ओर खींचते हैं। अधिकांश लोग तो भोगों की बाह्य चमक–दमक पर मुग्ध होकर उनके अन्दर छिपी हुई परिणाम दुःखता की ओर ध्यान न देते हुए प्रेय की ओर खिंच जाते हैं, किन्तु कोई विरला ही भाग्यवान प्रभु की अहैतुकी दया से श्रेय को अपनाता है।

इन दोनों प्रकार के मनुष्यों में जो श्रेय को अपनाकर तत्परता से योग साधन में लग जाता है उसका तो सब प्रकार से कल्याण होता है, किन्तु जो सांसारिक भोगों के साधन को स्वीकार करता है

वह मानव जीवन के परम लक्ष्य परमात्मा की प्राप्ति रूप यथार्थ लाभ से वंचित रह जाता है। इस प्रकार वह परमार्थ साधन से भ्रष्ट होकर वास्तविक सुख को नहीं प्राप्त कर पाता।

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्यविविनक्तिधीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षमाद् घृणीते।।

श्रेय और प्रेय ये दोनों ही साधन मनुष्य के सामने आते हैं। बुद्धिमान मनुष्य उन दोनों के गुण–दोषों पर विचार करते हुए दोनों को पृथक्–पृथक् समझने की चेष्टा करता है। वह दोनों के तत्व को भली–भाँति समझकर भोग–साधन की अपेक्षा श्रेय साधन (योग) को श्रेष्ठ मानकर उसे ही ग्रहण करता है किन्तु मन्द बुद्धि वाला मनुष्य लौकिक योग–क्षेम की इच्छा से भोगों के साधन रूप प्रेयमार्ग को अपनाता है।

श्रेय–मार्ग का पथिक किस प्रकार का आचरण किया करता है और वह किस प्रकार अपने लक्ष्य तक पहुँचता है इस बात का वर्णन मुण्डकोपनिषद् में सविस्तार किया गया है–

तपःश्रद्धेये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा।।

मनुष्य शरीर का महत्व समझ लेने के कारण जिसके अन्तःकरण में परमात्म–तत्व जानने की ओर परमेश्वर को प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा जाग उठी है। वे चाहे वन में रहने वाले वानप्रस्थ हों, शान्त स्वभाव वाले विद्वान सद्गृहस्थ हों अथवा भिक्षा पर निर्वाह करने वाले ब्रह्मचारी या संन्यासी हों वे तो निरन्तर श्रद्धापूर्वक पतश्चरण में लगे रहते हैं अर्थात् संयमपूर्वक योगाँगों का पालन करते हुए परम श्रद्धा के साथ परमेश्वर को जानने और प्राप्त करने के साधनों में लगे रहते हैं। जिसके फलस्वरूप वे रजोगुण के विकारों से मुक्त होकर शुद्धसत्व में स्थित होकर सूर्यलोक के मार्ग से वहाँ पहुँच जाते हैं, जहाँ उनके परम प्राप्य अमृतस्वरूप, नित्य, अविनाशी परमात्मा निवास करते हैं–

परीक्ष्यलोकान् कर्मचितान ब्राह्मणो, निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्, समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।।

कल्याण–कामी मनुष्य को चाहिए कि वह इस लोक और परलोक के समस्त सांसारिक सुखों की भलीभांति परीक्षा करके उनसे सर्वथा विरक्त हो जाना चाहिए। उसे यह निश्चित समझ लेना चाहिए कि कर्तापन के अभिमानपूर्वक सकाम भाव से किये जाने वाले कर्मों से स्वतः सिद्ध परमेश्वर नहीं मिल सकता। उस परब्रह्म परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसे हाथ में समिधा लेकर श्रद्धा और विनयपूर्वक वेदों के रहस्य को जानने वाले योगी गुरु की शरण में जाना चाहिये।

ऐसे सुपात्र शिष्य को शरण में आया देख कर गुरुदेव को क्या करना चाहिए। इस जिज्ञासा पर आगे कहा गया है–

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्।।

उन वेदों के तत्व को जानने वाले ब्रह्मनिष्ठ महात्मा को भी चाहिए कि वे अपनी शरण में आये हुए ऐसे शिष्य को जिसका चित्त पूर्णतया शान्त हो चुका हो, जिसने अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियों को भली–भाँति वश में कर लिया हो उसे ब्रह्म–विद्या का तत्व विवेचनपूर्वक उपदेश करे जिससे वह नित्य, [illegible]नाशी परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त कर सके।

उपनिषद हमें बार–बार यह चेतावनी देते हैं कि हम प्रकृति–जनक दुनिया में उलझकर अपने

अमूल्य मानव जीवन को व्यर्थ न खोयें बल्कि योग के अंग–उपांगों का पालन करते हुए ममता एवं आसक्ति से रहित होकर अपने कर्त्तव्य कर्मों को करते जायें। ईश्वर, शास्त्र एवं महापुरुषों में पूर्ण श्रद्धा रखते हुए शास्त्र–विहित कर्मों को कर्त्तृव्य के अभिमान से रहित होकर तथा फल की इच्छा न रखते हुए केवल मात्र भगवत्प्रीत्यर्थ करते रहें। ईशावास्योप–निषद् के दूसरे मन्त्र में यही बात कही गई है–

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँसमाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

मनुष्य को चाहिए कि वह इस संसार में सब कुछ ईश्वर को समझकर उन्हीं की पूजा के लिए शास्त्र–विहित कर्त्तव्य–कर्मों को करते हुये ही सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करे। इस प्रकार त्याग भाव से ईश्वर प्रीत्यर्थ किये जाने वाले कर्म–बन्धन के कारण नहीं बनते, प्रत्युत वे कर्म ही उसे निष्काम बना देते हैं। यह निष्कामता ही कल्याण की स्त्रोत है।

मुण्डकोपनिषद् के निम्नलिखित मन्त्र में सकाम उपासक की निन्दा एवं निष्काम कर्मयोगी की प्रशंसा करते हुए कहा गया है–

कामान् यः कामयते मन्यमानः, स कमाभिर्जायते तत्र तत्र।
पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्त्विहैव, सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः।।

भोगों को महत्त्व देने वाला मनुष्य नाना प्रकार की कामनाओं के फलस्वरूप जहाँ–जहाँ भोग उपलब्ध हो सकते हैं, वहाँ–वहाँ अपने कर्मों के अनुसार उत्पन्न होता है, किन्तु जो भगवान के प्रेमी भक्त इस जगत के सभी भोगों से विरक्त हो गये हैं, उन विशुद्ध अन्तःकरण वाले भक्तों की समस्त कामनायें शरीरान्त के समय इस शरीर में ही विलीन हो जाती हैं। जिसके परिणामस्वरूप उन्हें देह त्याग के बाद फिर जन्म नहीं लेना पड़ता और वे भगवान को पाकर जन्म–मरण के बन्धन से सदा के लिए मुक्त हो जाते हैं। अतः कल्याणकामी पवित्र–योग मार्ग का अनुयायी बनना चाहिए। योग–मार्ग ही परम श्रेय का साधन है।

अखिल ब्रह्माण्ड–नायक योग–योगेश्वर श्रीकृष्ण जी का यही आदेश है–

तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद्योगी भवार्जुन।।
रुद्रादि शब्दानां प्रणवो हि परः स्मृतः।

अर्थात् भगवान सदाशिव ही वाचक प्रणव के वाच्य हैं। शिव रुद्रादि शब्दों में उनका बोधक नाम प्रणव ही प्रमुख है और उन भगवान महेश्वर में कोटानि–कोटि ब्रह्मा, विष्णु का समावेश है।

इस प्रकार यह प्रमाण से सिद्ध हो चुका है कि ॐ ईश्वर का नाम अथवा उसका प्रतीक है। वास्तव में ओ३म् से ही यह व्यक्त जगत उत्पन्न हुआ है। इसकी सत्ता भी ओ३म् में ही है और अन्त में जगत ओ३म् में ही लय हो जाता है। जीव आत्मा की आत्मा उसका असली स्वरूप है। आत्मा एक विशुद्ध निर्मल ज्योति है। उसे प्रकृति के तीन गुणों सत, रज, तम से ढका हुआ है। सतोगुण सफेद रंग की चिमनी है। जिसमें से आत्मा की ज्योति स्पष्ट झलकती है। दूसरी लाल रंग की चिमनी रजोगुण की है, इसके माध्यम से वह शुभ्र प्रकाश लाल हो जाता है, जिससे आत्मा का यथार्थ ज्ञान नहीं होता। तीसरी चिमनी तमोगुण की काले रंग की है। इसके अन्धकार में कुछ नजर नहीं आता यही जीव का अज्ञान है और यह अज्ञान ही बन्धन का कारण है।

जिव जबतें हरि बिलगान्यो

जिव जबतें हरितें बिलगान्यो। तबतें देह गेह निज जान्यो।
मायावस स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रमतें दारुन दुःख पायो।

पायो जो दारुन दुसह दुःख, सुख-लेस सपनेहुँ नहिं मिल्यो।
भव-सूल, सोक अनेक जेहि, तेहि पंथ तू हठि हठि चल्यो।।

बहु जोनि जनम, जरा, बिपति, मतिमन्द, मतिमन्द ! हरि जान्यो नहीं।
श्रीराम बिनु बिश्राम मूढ़ ! बिचारु लखि पायो कहीं।।

अर्थात्

हे जीव ! जब से तू भगवान् से अलग हुआ, तभी से तूने शरीर को अपना घर मान लिया। माया के वश होकर तूने अपने "सच्चिदानन्द स्वरूप" को भुला दिया, और इसी भ्रम के कारण तुझे दुःख भोगने पड़े। तुझे बड़े ही कठिन (जन्म-मरण रूपी) असहनीय दुःख मिले। सुख का तो स्वप्न में भी लेश नहीं रहा। जिस मार्ग में अनेक संसारी कष्ट और शोक भरे पड़े हैं, तू उसी पर हठपूर्वक बार-बार चलता रहा। अनेक योनियों में भटका, बूढ़ा हुआ, विपत्तियाँ सहीं। (मर गया।) पर, अरे मूर्ख ! तूने इतने पर भी श्री हरि को नहीं पहचाना। अरे मूढ़ ! विचार कर देख, श्रीराम जी को छोड़कर (किसी ने) क्या कहीं शान्ति प्राप्त की है।

(विनय पत्रिका से)

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/21-22 JULY 2021

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

सूत ! सर्व पुराणज्ञ सर्वमाहात्म्यविदांवर
गुरुमाहात्म्यविशेषेण श्रोतुकामा वयं सदा

ऋषियों ने कहा- सब माहात्म्य जानने वालों में श्रेष्ठ, सब पुराणों के जानने वाले हे सूतजी! हम सदा विशेष करके गुरु माहात्म्य के सुनने की इच्छा करते हैं।

संस्थापक:– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दाऊलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566 सम्पादक : आचार्य ब. (डॉ.) दाऊलाल शर्मा